ॐ

पं. सदासुख ग्रंथमाला पुष्प न. ६

श्री पं. दीपचन्दजी कासलीवाल रचित

अध्यात्म पंच संग्रह

-: सम्पादक :-

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच (म.प्र.)

वीतराग-विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट अजमेर (राज.)

-: प्रकाशक :-

पं. सदासुख ग्रन्थमाला

अन्तर्गत श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

डॉ. नन्दलाल मार्ग, पुरानी मंडी, अजमेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

कविवर पण्डित दीपचन्द जी सत्रहवीं शताब्दी के उच्च कोटि के हिन्दी कवि हुए है । यद्यपि हिन्दी साहित्य के किसी भी इतिहास में उनका नामोल्लेख तक नहीं है, किन्तु उनके द्वारा रचित जो गद्य-पद्य रचनाएं मिलती हैं, वे खड़ी बोली की ऐसी काव्यात्मक मनोहारी रचनाएँ हैं जिनमें ब्रजभाषा की सुन्दर छटा लक्षित होती है । हिन्दी साहित्य में शोध-अनुसंधान करने वाले शोधार्थियों को इन सभी रचनाओं पर समस्त तथा व्यस्त रूप से समीक्षात्मक अनुशीलन करना चाहिए । इस दृष्टि से तथा आध्यात्मिक जगत् में स्वाध्यायी जनों के आत्महित को ध्यान में रख कर ''आध्यात्म-पंचसंग्रह'' का प्रकाशन किया जा रहा है ।

श्रद्धेय पण्डितप्रवर सदासुखदासजी कासलीवाल के पवित्र साधना स्थल नगर अजमेर में धर्मनिष्ठ श्री पूनमचंदजी लुहाड़िया द्वारा दिनांक 16 अप्रैल, 85 को प्रस्थापित संस्था श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अजमेर गत 10 वर्षों से विविध योजनाओं के माध्यम से वीतराग दि. जैन धर्म के प्रचार-प्रसार एवं धर्मप्रभावना के क्षेत्र में उल्लेखनीय रूप से गतिशील है । इसी ट्रस्ट के अन्तर्गत स्थापित 'श्री प. सदासुख ग्रंथमाला' द्वारा अब तक निम्नलिखित जनोपयोगी ग्रंथों का प्रकाशन किया जा चुका है -

(1) मृत्यु महोत्सव (तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं)
(2) सहज सुख साधन
(3) बारह भावना शतक (द्वितीय खंड)
(4) साधना के सूत्र
(5) आगम रत्न (बोलती दीवारें)

स्वाध्याय मंदिर के भव्य भवन में निर्मित श्री सीमन्धर जिनालय में प्रतिदिन प्रातःकाल सामूहिक जिनेन्द्रपूजा एवं स्वाध्याय कार्यक्रम आत्मसाधना के पिपासु साधर्मी बंधुओं के लिए सहज साधन के रूप में उपलब्ध है । गत वर्षों में अष्टान्हिक-दशलक्षण पर्व एवं अन्य अनेक विशेष प्रसंगों पर जैन दर्शन के उच्चस्तरीय-आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ता मनीषी विद्वानों के सान्निध्य तथा निर्देशन में शास्त्र-प्रवचन, तत्त्वगोष्ठी, विशिष्ट विधान पूजाएँ, भक्ति संगीत तथा अन्य विविध सांस्कृतिक, अध्यात्मिक कार्यक्रमों के संयोजन द्वारा वीतराग जिनशासन की प्रभावना कार्य में ट्रस्ट सतत गतिशील रहा है। इस वर्ष ट्रस्ट में श्री कुदंकुद-कहान दि. जैन तीर्थ रक्षा ट्रस्ट, बम्बई द्वारा संचालित श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के अन्तर्गत श्री पं. सदासुखदास दि. सिद्धान्त विद्यालय स्थापित करके 25 छात्रों के पठन-पाठन निवास, भोजनादि का समस्त खर्च स्थायी रूप से देने

का निर्णय लेकर जैन विद्वान् तैयार करने की महत्त्वपूर्ण योजना को विशेष बल प्रदान किया है। जैन समाज के प्रतिभाशाली होनहार छात्र-छात्राओं को प्रोत्साहन देने हेतु कई योजनाएं ट्रस्ट ने प्रारंभ की है। अजमेर में श्री कुंदकुंद शोध संस्थान स्थापना की परिकल्पना साकार तथा अजमेर की दिशा में एक उल्लेखनीय योजना है। श्री पं. सदासुखदासजी के व्यक्तित्व एवं कर्तव्य पर स्वीकृत शोध प्रबंध पर शोधकर्ता विद्वान को 21000/- का नगद पुरस्कार एवं प्रशस्ति-पत्र द्वारा सम्मानित किये जाने का ट्रस्ट ने निर्णय लिया है। जनोपयोगी संस्था श्री जैन औषधालय, अजमेर तथा श्री जैन औषधालय कोटा को फ्री औषधि वितरण हेतु प्रतिमाह 2000/- ट्रस्ट द्वारा दोनों औषधालयों को अनुदान दिया जा रहा है। विभिन्न स्थानों पर आयोजित विशेष शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों के संचालन हेतु भी आर्थिक अनुदान ट्रस्ट प्रदान कर रहा है। इस प्रकार ट्रस्ट वीतराग दि. जैन धर्म के प्रचार-प्रसार कार्य में पूर्ण रूप से समर्पित है।

आध्यात्मिक जगत में स्वाध्यायी जनों के आत्महित को दृष्टि में रख कर ट्रस्ट द्वारा श्री पं. सदासुख ग्रंथमाला के अन्तर्गत कविवर पं. दीपचन्दजी शाह कासलीवाल द्वारा लिखित 'अध्यात्म पंच संग्रह' का यह प्रकाशन भी इसी श्रृंख्ला मे एक लोकोपयोगी कार्य है। अध्यात्मरसिक तत्त्ववेता श्री पं. दीपचन्दजीशाह के नाम से सम्पूर्ण अध्यात्म जगत परिचित है।

प्रस्तुत संग्रह के सम्पादन का कार्य अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वतपरिषद् के अध्यक्ष तथा हमारी समाज के मूर्धन्य मनीषी डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री के बारम्बार किए गए हमारे अनुरोधों का ध्यान में रख कर अत्यन्त श्रम पूर्वक निस्पृह भाव से किया है।

आपके द्वारा लिखित प्रस्तावना में अनेक महत्त्वपूर्ण चिन्तन योग्य तथ्यों को उजागर किया गया है। अतः ट्रस्ट आपका बहुत -बहुत आभारी है।

इस बहुमूल्य प्रकाशन की कीमत कम करने हेतु जिन दातारों ने आर्थिक अनुदान दिया है। (सूची अलग दी जा रही है) ट्रस्ट उनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

हमें विश्वास है कि अध्यात्म रस के अनुप्राणित इस विशिष्ट प्रकाशन द्वारा वीतराग दि. जैन धर्म की विशेष प्रभावना होकर जन साधारण को अध्यात्म का अमृतपान करने का शुभ योग प्राप्त हो सकेगा। वर्तमान तथा भावी पीढ़ी को इस प्रकार के साहित्य से अमूल्य मार्ग-दर्शन मिलेगा।

विनीत

हीराचन्द बोहरा,

मंत्री,

वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

अजमेर (राजस्थान)

ग्रन्थानुक्रम पृष्ठ

१. परमात्मपुराण	१–४६
२. सवैया–टीका	४७–५२
३. ज्ञानदर्पण	५३–११५
४. स्वरूपानन्द	११६–१४१
५. उपदेशसिद्धान्तरत्न	१४१–१६८
परिशिष्ट : आत्मावलोकन स्तोत्र	१६६–१७८

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रस्तावना

तीर्थंकर महावीर की अनवच्छिन्न परम्परा में केवली, श्रुतकेवली तथा श्रुतधर आचार्यों की सुदीर्घ श्रृंखला में जिनागम तथा जिनश्रुत की रचना की गई। कालान्तर में प्राकृत तथा संस्कृत भाषाओं में निबद्ध ग्रन्थों का भावार्थ दुरूह होने से तथा शिथिलाचार की प्रवृत्ति में यतियों का तथा दिगम्बर सम्प्रदाय में विशेषतः भट्टारकों का प्रभुत्व बढ़ जाने से यापनीय संघ प्रबल हो गया, जिससे मूलसंघ विस्मृत–सा हो गया। यद्यपि छठी सदी के पूर्व भारतीय देवी–देवताओं का अभिषेक नहीं होता था, लेकिन सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही दक्षिण भारत में पंचामृत (जल, इक्षुरस, घृत, दुग्ध, दधि) अभिषेक होने लगा था। दिगम्बर सम्प्रदाय मे बीसपन्थ में इसका प्रारम्भ यापनीय संघ से हुआ। जैनधर्म में कर्मकाण्ड तथा शिथिलाचार पनपने का मुख्य द्वार यापनीय संघ रहा है। यही कारण है कि इसकी गिनती जैनाभास संघों में की गई है। शिलालेखीय उल्लेखों से पता चलता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में यह एक प्रबल उप–संप्रदाय हो गया था। जो 'भट्टारक' शब्द प्राचीन काल में सम्मान सूचक एक विशेषण था, वह मध्यकाल में एक वर्ग विशेष के लिए रूढ़ हो गया। यह काल का ही प्रभाव है कि शिथिलाचार साधु–वर्ग में ही नहीं, जैन गृहस्थों में भी बुरी तरह फैल गया है। इससे अधिक दुःख तथा खेद की क्या बात हो सकती है कि आज जैनियों के घर में "चौका" नहीं रहे। "चौका" की परम्परा उठ जाने से खान–पान तथा पहिनाव, उठना–बैठना सब में भ्रष्टाचार फैल गया है।

मार्गदर्शक

प्रस्तुत "अध्यात्म पंचसंग्रह" की रचना करने वाले कविवर पं० दीपचन्द कासलीवाल का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था, जब इस देश में रहने वाला प्रत्येक वर्ग का पुरुष घोर अज्ञान–अन्धकार में साँस ले रहा था। उस समय के राजस्थान के शासक भी निष्क्रिय थे। जयपुर के राजा सवाई जयसिंह ने अवश्य हिन्दुओं के प्रभाव को एक बार पुनः स्थापित किया। वर्तमान जयपुर का निर्माण उनकी ही देन है। परन्तु सवाई जयसिंह के पुत्र ईश्वरसिंह के शासन (१७४४–१७५० ई०) सम्भालते ही विघटन प्रारम्भ हो गया था। अतः जनता दुखी थी।

परिचय

पं० दीपचन्द जाति से खण्डेलवाल तथा कासलीवाल गोत्र के थे। आप सांगानेर के निवासी थे। युवावस्था में ही आप जयपुर की राजधानी आमेर में आ कर बस गये थे। वहीं पर रह कर आपने अधिकतर रचनाएँ लिखीं। आपकी प्रसिद्धि दीपचन्द साधर्मी (भाई) के नाम से रही है। आप संस्कृत, प्राकृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे। आपने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का सार ग्रहण कर तथा उनके उद्धरण दे कर रचनाओं का निर्माण किया। यद्यपि आपके जन्म तथा जीवन के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं मिलता है, फिर भी यह अनुमान किया जाता है कि आप पं० हेमराज पाण्डेय के समय में जीवित रहे होंगे। क्योंकि उस युग के जयपुर राज्य के जैन साहित्यकारों ने काव्य–जगत में तथा विशेष रूप से हिन्दी खड़ी बोली के गद्य का अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण विकास किया था। कहा जाता है कि उन दिनों में जयपुर में लगभग एक सौ दिगम्बर जैन मन्दिर थे। अकेले जयपुर नगर में लगभग दस–बारह हजार जैनी निवास करते थे। उस समय राजा के दीवान प्रायः जैन होते थे। राव कृपाराम तथा शिवजीलाल उस युग के प्रसिद्ध दीवान हुए। प्रधान दीवान अमरचन्द (१८१०–१८३५) का नाम राजस्थान में चारों ओर विश्रुत था।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अध्यात्म-पंचसंग्रह

प्रस्तुत ग्रन्थ में शाह दीपचन्द साधर्मी रचित पाँच रचनाओं का सुन्दर संकलन है। इसका प्रथम संस्करण श्री दि० जैन उदासीनाश्रम, इन्दौर से वि० संवत् २००५ में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत संग्रह में परमात्मपुराण, ज्ञानदर्पण, स्वरूपानन्द, उपदेशसिद्धान्तरत्न और सवैया–टीका ये पाँच रचनाएँ हैं। इनमें से परमात्मपुराण तथा सवैया–टीका गद्य रचनाएँ हैं। शेष तीनों कवित्त पूर्ण आध्यात्मिक काव्य रचनाएँ हैं। आदरणीय पं० नाथूलालजी शास्त्री ने प्रस्तुत संग्रह की भूमिका में इन रचनाओं की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि कवि का

आध्यात्मिक ज्ञान एवं कवित्व उच्च कोटि का है। यथार्थ में "परमात्मपुराण" गद्य की एक ऐसी अपूर्व रचना है जो हिन्दी में इसके पूर्व नहीं रची गई थी। कवि 'दीप' (दीपचन्द कासलीवाल) ज्ञान का वर्णन करते हुए निम्नांकित भावाभिव्यक्ति करते हैं–

"ज्ञान अनंतशक्ति स्वसंवेदरूप धरे, लोकालोक का जाननहार अनंतगुण को जाने। सत् परजाय, सत् वीर्य, सत् प्रमेय, सत् अनंत गुण के अनंत सत् जाने, अनंत महिमा निधि–ज्ञान रूप ज्ञान ज्ञानपरिणति नारी ज्ञान सों मिलि परिणति ज्ञान का अंग–अंग मिलन ते ज्ञान का रसास्वाद परिणति ज्ञान की ले ज्ञान परिणति का विलास करे। जानन रूप उपयोग चेतना ज्ञान की परिणति प्रगट करे। जो परिणति नारी का विलास न होता, तो ज्ञान अपने जानन लक्षण को यथारथ न राखि सकता। जैसे अभव्य के ज्ञान है; ज्ञान परिणति नहीं, तातैं ज्ञान यथारथ न कहिये। तातैं ज्ञान ज्ञानपरिणति को धरे, तब यथारथ नांव पावै। तातैं ज्ञानपरिणति ज्ञान यथारथ प्रभुत्व राखे है। जैसे भली नारी अपने पुरुष के घर का जमाव करे है, तैसे ज्ञान स्वसुखजुक्त घर ज्ञान परिणति करे है। ज्ञानपरिणति ज्ञान के अंग को वेदि–वेदि विलसे है। ज्ञान के संगि सदा ज्ञानपरिणति नारी है। अनंत शक्ति जुगपत सब ज्ञेय जानन की ज्ञान में तो है, परि जब ताईं ज्ञान की परिणति नारी सों भेंट न भई, तब ताईं अनंत शक्ति दबी रही। यह अनंत शक्ति परिणति–नारी ने खोली है। जैसे विशल्या ने लक्ष्मन की शक्ति खोली, तैसे ज्ञानपरिणति नारी ने ज्ञान की शक्ति खोली। ऐसे ज्ञान अपनी परिणति–नारी का विलास तैं अपने प्रभुत्व का स्वामी भया। परिणति ने जब ज्ञान वेद्या वेदता भोग अतेन्द्री भया, तब ज्ञानपरिणति का संभोग ज्ञानपुरुष किया, तब दोइ संभोग योग तैं आनंद नाम पुत्र भया। तब सब गुण–परिवार ज्ञान में आये सो ज्ञान के आनंद पुत्र भये हरष भया, सबके हरष मंगल भया।" (पृ. ४३–४४)

इसी प्रकार परमात्म राजा दरसन मन्त्री, ज्ञान मन्त्री, सम्यक्त फौजदार, परिणाम कोटवाल, आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है।

"ज्ञानदर्पण" में कुल १९६ पद्य हैं। अधिकतर रचना सवैया छन्द में निबद्ध है। "स्वरूपानन्द" सवैया तथा दोहा छन्दों में रचित ९५ पद्यों

की रचना है। इसी प्रकार "उपदेश सिद्धान्तरत्न" भी ८७ सवैयों तथा ४ दोहों में रचित लघुकाय रचना है। अन्त में केवल एक सवैया की आठ पृष्ठों में गद्य में विशद टीका की गई है।

यथार्थ में "परमात्मपुराण" एक आध्यात्मिक प्रथमानुयोग की शैली में रचित अनूठी रचना है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की यह प्रथम तथा अपूर्व रचना है। इस गद्य–रचना में शिव–द्वीप के अखण्ड देश पर राज्य करने वाले परमात्मा राजा का आध्यात्मिक वर्णन किया गया है। निज सत्ता के प्रासाद (महल) में निवास करता हुआ परमात्मा राजा 'चेतना–परिणति' रानी के साथ रमण करता हुआ परम अतीन्द्रिय, अबाधित आनन्द को उत्पन्न करता है।

सत्ता-स्वरूप - सत्ता अपने स्वरूप को लिए हुए है। सत्ता सब को साधती है। जो मोक्षमार्ग को साधे सो साधु है। स्वपद को साधे सो सत्ता है। द्रव्य की सत्ता द्रव्य को साधती है, गुण की सत्ता गुण को साधती है, पर्याय की सत्ता पर्याय को साधती है तथा ज्ञान की सत्ता ज्ञान को, दर्शन की सत्ता दर्शन को, वीर्य की सत्ता वीर्य को, प्रमेयत्व की सत्ता प्रमेयत्व को एवं अनन्त गुणों की सत्ता अनन्त गुणों को साधती है। सत्ता के आधार पर ही उत्पाद, व्यय, ध्रुव हैं। यद्यपि एक द्रव्य में अनन्त गुण कहे गए हैं, किन्तु उन गुणों में सत्ता–भेद नहीं है। अनन्त गुणों का आधार भाव एक है।

द्रव्य - गुण, पर्याय की ओर जो ढलता है उसे द्रव्य कहते हैं। द्रवत्व के कारण द्रवीभूत होने पर द्रव्य से परिणाम उत्पन्न होता है। परिणाम के प्रकट होने पर गुण द्रव्य रूप परिणत हो जाता है। द्रव्य जब द्रवित होता है, पर्याय की ओर ढलता है, तब गुण, पर्याय की सिद्धि होती है। द्रव्य पुरुष है, परिणति नारी है। यदि वह द्रव रूप परिणमन न करे, तो द्रव्य नहीं हो सकता। द्रव्य की द्रवता में परिणति कारण है। द्रवता सभी गुणों में है। किसी गुण की परिणति किसी अन्य गुण में नहीं पाई जाती।

वस्तु - जिसमें गुण वसते हैं उसे वस्तु कहते हैं। वस्तु सामान्य–विशेष रूप है। जानन मात्र ज्ञान सामान्य है, क्योंकि इसमें अन्य भाव नहीं है। किन्तु स्व–पर का जानना यह ज्ञान का विशेष है। आत्मा ज्ञान

स्वरूपी वस्तु है। ज्ञान वस्तुत्व का स्वरूप ज्ञान में ही रहता है। अतः सामान्य–विशेष के कारण ही ज्ञान को वस्तु कहते हैं। सभी वस्तुओं की सिद्धि सामान्य–विशेष से होती है। प्रथम सामान्य भाव होता है। यदि सामान्य भाव न हो, तो विशेष भाव नहीं हो सकता है। सामान्य विशेष को लिए हुए है। अतः सामान्य के होने पर ही विशेष नाम प्राप्त करता है। जो वस्तु है वह क्रम सहभावी रूप है। गुण की परिणति का क्रम गुण का है। सभी गुण सहभाग क्रम को धारण करते हैं। यदि द्रव्य गुण रूप परिणमन न करे, तो गुण की सिद्धि नहीं हो सकती। वस्तुतः एक ही सत्ता की ऋद्धि सभी गुणों में विस्तृत है। अतः सभी द्रव्य तथा वस्तुएँ शाश्वत हैं। वस्तु का भाव वस्तुत्व है। वस्तुत्व सभी वस्तुओं में व्यापक है। वस्तुतः वस्तु को ज्ञान, ज्ञेय या ज्ञायक कहने पर उसका सर्व प्रकाश एक चैतन्य वस्तु का है। इसके विषय में ही कहा गया है– "ज्ञान की जगनि में जोति की झलक है" (स्वरूपानन्द, पद्य, ७७)

परमात्मा का राज्य - परमात्मा राजा के राज्य में प्रजा अनन्त गुण–शक्ति पर्याय से सम्पन्न है। सभी गुणपुरुष तथा परिणति–नारी अनन्त विलास के द्वारा सुखी हैं। उस राजा के तीन मन्त्री हैं–दर्शन, ज्ञान, चारित्र। फौजदार या सेनापति सम्यक्त्व है तथा कोतवाल परिणाम है। परमात्मा के राज्य में गुणी पुरुष गुणसत्ता के मन्दिर में निवास करते हैं। उसके राज्य में गुण–प्रजा विलास करती है। राजा और चेतनापरिणति रानी का क्या कहना है? दोनों एकमेक हो अतीन्द्रिय विलास करते हैं। वास्तव में परमात्मा राजा का राज्य शाश्वत, अचल है। उसके अनन्त पदाधिकारी हैं जो सम्यक् प्रकार से पद के योग्य कार्य करते रहते हैं।

दर्शन - देखने मात्र का नाम दर्शन है। अनन्त गुण, द्रव्य तथा पर्याय का अवलोकन होना दर्शन है। दर्शन मन्त्री परमात्मा राजा की सतत सेवा करता है। यदि दर्शन देखने का काम न करे, तो छद्मस्थों (अल्पज्ञों) को ज्ञान कैसे हो सकता है? वस्तुतः परमात्मा का रूप नित्य, निराकार, निर्विकल्प है। सम्पूर्ण चेतना का कारण एक दर्शन गुण है। दर्शन सभी गुणों में बहुत सूक्ष्म है। दर्शन गुण सब को देख–देख कर

साक्षात् करता है। वह सामान्य सत् निर्विकल्प सेवा करता है। दर्शन में ज्ञान गुण भी दर्श जाता है, इसलिये केवलदर्शन में केवलज्ञान का अवलोकन होता है तथा प्रत्यक्ष ज्ञानी की मुनिसंज्ञा कही जाती है। दर्शन अनन्त गुणों को प्रत्यक्ष देखता है।

वास्तव में निर्विकल्प स्वरूप ही वस्तु का सर्वस्व है। यह एक नियम है कि सामान्य भाव के बिना विशेष नहीं होता है। अतः वस्तु की सिद्धि दर्शन से है। ब्रह्म में भी सर्वदर्शित्व शक्ति दर्शन के कारण है। वस्तुतः दर्शन दर्शन को देखता है, निर्विकल्प सत् का अवलोकन करता है। सामान्य–विशेष रूप सब पदार्थों को निर्विकल्प सत्ता अवलोकन, दर्शन करता है; ज्ञान में निर्विकल्प सत्ता रूप अवलोकन नहीं होता। यथार्थ में परमात्मा राजा को देखने से ही सब सिद्धि है। बिना देखे क्रिया नहीं होती। दर्शन–परिणत नारी का सुहाग भी दर्शनपति के मिलन पर ही होता है। जब तक वह अपने पति से दूर रहती है, तब तक निर्विकल्प रस की प्राप्ति न होने से वह व्याकुल बनी रहती है। अतएव अनन्त सर्वदर्शित्व शक्ति के नाम अपने पति से भेंट होती ही वह निराकुल हो जाती है। वास्तव में यह महिमा दर्शन की है। परिणति के अनुसार दर्शन है। जब परिणति दर्शन को धारण करती है, तब आप आप में सुखी होता है। परिणति को दर्शन के बिना विश्राम नहीं मिलता है और दर्शन को भी परिणति के बिना सुख तथा शुद्धता प्राप्त नहीं होती। वास्तव में दर्शन के वेदन करने पर ही परिणति शुद्ध होती है। दर्शन ज्ञेय को देखता है– यह उपचार कथन है। यथार्थ में दर्शन ज्ञेय के सम्मुख ही नहीं होता है।

परमात्मा राजा का अनन्त वैभव है। उस वैभव में अनन्त गुण हैं और उन गुणों में अनन्त शक्ति तथा अनन्त पर्याय हैं। एक–एक गुण की पर्याय में अनन्त नृत्य हैं। प्रत्येक नृत्य में अनन्त घाट, घाट में अनन्त कला, कला में अनन्त रूप, रूप में अनन्त सत्ता, सत्ता में अनन्त भाव, भाव में अनन्त रस, रस में अनन्त प्रभाव, प्रभाव में अनन्त वैभव, वैभव में अनन्त ऋद्धि, ऋद्धि में अतीन्द्रिय, अनाकुल, अनुपम, अखण्ड, अविनाशी, स्वाधीन अनन्त है। इस सब को जानने वाला ज्ञान है। जैसे किसी के घर में अपार सम्पत्ति गड़ी हुई हो; लेकिन उसे उसका पता

न हो, तो वह सम्पत्ति होने पर भी न होने के समान है। इसी प्रकार सभी विशेष भावों को तथा स्व–पर को जाननहार, जनावने वाला ज्ञान ही है।

ज्ञान- ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। आत्मा के सभी गुणों में ज्ञान गुण प्रधान है। वस्तुतः ज्ञान स्वसंवेदन से तिलसित है। ज्ञान के जानपना होने से वह अपने आप को जानता है, अपना (शुद्धात्मा या परमात्मा का) अनन्त वैभव प्रकट करता है। अपने आप को जानने से ज्ञान शुद्ध है। ज्ञान में ऐसी शक्ति है कि वह त्रिकालवर्ती सभी पदार्थों को और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को एक साथ एक समय में जानता है। यदि ज्ञान न जाने, तो अनुभव नहीं हो सकता। बिना अनुभव के कुछ हुआ या नहीं हुआ बराबर है। यदि यह ज्ञान नहीं होता, तो परमात्मा राजा की विभूति कौन प्रकट करता? परमात्मा राजा ने ज्ञायक होने के कारण ही सभी मन्त्रियों में ज्ञान को प्रधानमंत्री बनाया। वास्तव में राजा का राज्य, प्रशासन ज्ञान से ही चलता है।

स्वभाव से ज्ञान अपने में स्थिर, गुप्त, अखण्ड, ध्रुव तथा आनन्दविलासी है। गुण अपने लक्षण की रक्षा करने के कारण क्षत्रिय कहा जाता है तथा निर्विकल्प रीति बदलने का व्यापार करने से वैश्य एवं ब्रह्म ज्ञान में व्याप्त होने से ब्राह्मण और पर्याय–वृत्ति से सब गुणों की सेवा करने के कारण शूद्र कहा जाता है। ज्ञान निज सत्ता–गृह में अपने स्वरूप में रहता है। ज्ञान गुण की अनन्त महिमा है, क्योंकि सभी गुणों की महिमा प्रकट करने वाला ज्ञान ही है। ब्रह्म स्वरूप का आचरण करने के कारण ज्ञान ब्रह्मचारी कहा जाता है, निज सत्तागृह में रहने के कारण गृहस्थ तथा अपने स्वरूप में रहने के कारण 'वानप्रस्थ' कहा जाता है। अपनी ज्ञायक परिणति को साधने के कारण ज्ञान 'साधु' कहा जाता है।

परमात्मा राजा ज्ञान से ही सब को जानता है। ज्ञानमन्त्री ही उसे सबकी जानकारी देता है। वास्तव में परमात्मा राजा ने अपना सर्वस्व ज्ञानमन्त्री को ही सौंप दिया है, क्योंकि विशेष अतीन्द्रिय आनन्द की ऋद्धि ज्ञान ही प्राप्त करता है। अतः राजा के लिए ज्ञान से अन्य महान् कोई नहीं है।

चारित्र– स्थिरता भाव की प्राप्ति का नाम चारित्र है। राजा को ज्ञान के द्वारा जो ऋद्धि प्राप्त होती है, उसे बनाये रखने में चारित्र के अनुसार कार्य करना होता है जिसे अन्य कोई कर नहीं सकता है। परमात्मा राजा को देखने–जानने में जिस अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है, उसकी स्थिरता चारित्र से ही उपलब्ध होती है। यदि चारित्र न होता, तो राजा को अपनी राजधानी का सुख विलास नहीं मिलता। अतएव चारित्र राज्यपद की सफलता का कारण है। यह चारित्रमन्त्री सभी गुणों को सफल करता है। सफलता मिलने पर ही गुण–प्रजा का विलास समझा जाता है। अतः राज्यपद को टिकाए रखने वाला चारित्र बड़ा मन्त्री है।

सम्यक्त्व- सम्यक्त्व सेनापति या फौजदार है। आत्मा के असंख्य प्रदेशों की गुणप्रजा का पालन सम्यक्त्व करता है। जो प्रजा के प्रतिकूल है, वह उसका प्रवेश नहीं होने देता है। अज्ञान ज्ञान के प्रतिकूल है। अज्ञान के कारण ही संसारी जीव अन्धे हो कर संसार में मारे–मारे फिर रहे हैं। जीव अपने स्वरूप को नहीं पहचानते हैं, इसलिये निजतत्त्व से भिन्न पर को हेय नहीं जानते हैं। ऐसे अज्ञान का अंश मात्र भी प्रवेश सम्यक्त्व नहीं होने देता है। मोह के कारण संसारी जीव अनन्त ज्ञान के धनी को भी भूल गया है। इस मोह को भी यह सम्यक्त्व अपने यहाँ नहीं आने देता है। सम्यक्त्व का ऐसा प्रताप है कि वह भावकर्म (राग–द्वेष आदि) तथा नोकर्म का प्रवेश नहीं होने देता है। वह परमात्मा की राजधानी को जैसी की तैसी रखता है। परमात्मा राजा के जितने भी गुण हैं, वे इस सम्यक्त्व के होने से शुद्ध हैं। इस कारण राजा ने सम्यक्त्व को ऐसा कार्य सौंपा है। सम्यक्त्व परमात्मा राजा की आज्ञा का ऐसा पालन करता है कि हर्ष, शोक आदि पर भावों के वश में हो कर जीव जो अपने स्वरूप का अनुभव नहीं कर सकते हैं, उनको निर्भय कर अपने स्वभाव से प्रतिकूल रहने वालों को पास में नहीं आने देता है। इस प्रकार सम्यक्त्व सेनापति परमात्मा का सब कुछ तथा संरक्षक है। परिणाम कोतवाल तो नगर में चोर रूपी पराये (पर) परिणामों का प्रवेश नहीं होने देता है। राग–रंग आदि पर परिणाम आत्म–निधि की चोरी करने मे चतुर हैं। अतः परिणाम कोतवाल उनसे रक्षा करता है।

रचनाएँ- प्राप्त जानकारी के अनुसार पं० दीपचन्द कासलीवाल द्वारा रचित पन्द्रह रचनाएँ उपलब्ध होती हैं जो इस प्रकार हैं–

१ आत्मावलोकन (गद्य) (रचना–काल वि०सं० १७७४)
२ चिद्‌विलास (गद्य) (फागुन वदि ५, वि०सं० १७७६)
३ अनुभवप्रकाश (गद्य) (रचना–काल वि०सं० १७८१)
४ परमात्मपुराण (गद्य) (अज्ञात)
५ सवैया–टीका (गद्य) (अज्ञात)
६ भावदीपिका (गद्य) (अज्ञात)
मार्गदर्शक :-
७ अनुभवानन्द (गद्य, पत्र सं. ५६) (अज्ञात)
८ अनुभवविलास (पद संग्रह) (अज्ञात)
९ स्वरूपानन्द (पद्य) (माघ सुदि ५, वि०सं० १७६१)
१० ज्ञानदर्पण (पद्य) (अज्ञात)
११ गुणस्थानभेद (गद्य) (अज्ञात)
१२ उपदेशसिद्धान्तरत्न (पद्य) (अज्ञात)
१३ अध्यात्मपच्चीसी (पद्य) (अज्ञात)
१४ आरती
१५ विनती

इनमें से सात रचनाएँ गद्य में रचित हैं और शेष आठ रचनाएँ पद्य में हैं।

रचनाकाल- रचनाकार ने "उपदेश सिद्धान्त" में धर्मसंग्रहकार पं. मेधावी का प्रमाण दिया है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विक्रम संवत् १७०० से १८०० के मध्य पं. दीपचन्द कासलीवाल का रचना–काल रहा होगा। अपने युग का यथार्थ चित्रण करते हुए समय की माँग को उन्होंने निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है। उनके ही शब्दों में – *"काल–दोष तैं सम्यग्ज्ञानी, वीतराग प्रवृत्तिन के धारक यथार्थ वक्तान का तो अभाव भया अर अवसर्पिणी काल के निमित्त तैं जिनमत विषैं कुलिंग के धारक प्रचंड हैं क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषाय जिनके अरु पंच इन्द्रियन के विषय में हैं आसक्त भाव जिनके, साक्षात् गृहीत मिथ्यात्व के पोसने तैं जिनमत के विषैं वक्ता भये, जिनसूत्र के अर्थ अन्यथा करने लगे, ता करि भोले जीव तिनकी बताई प्रवृत्ति*

विषैं प्रवर्तते भये, नहीं है सत्य सूत्र का ज्ञान जिनको अरु नाहीं है संस्कृत का ज्ञान जिनको, ताकरि महंत शास्त्रन का ज्ञान तिन तैं अगोचर भया। ताकरि मूढता को प्राप्त भये, हीन शक्ति भये। सत्य वक्ता, साँचा जिनोक्त सूत्र का अर्थ ग्रहण करावनेहारा कोई रहा नाही। तातैं सत्य जिनमत का तो अभाव भया। तब धर्म तैं परान्मुख भये। तब कोई–कोई गृहस्थ सुबुद्धि संस्कृत–प्राकृत का वेत्ता भया। ताकरि तिन सूत्रन को अवगाहा।"

(भावदीपिका, अन्त्य)

यद्यपि पण्डित–परम्परा लगभग सातवीं शताब्दी से सतत प्रवहमान है, फिर भी इसमें जो प्रखरता तथा कर्मकाण्ड के विद्रोही स्वर दसवीं शताब्दी में मुनि रामसिंह के "पाहुडदोहा" में लक्षित होते हैं, वास्तव में उसी पद्धति का अनुवर्तन परवर्ती पं. बनारसीदास तथा पण्डितप्रवर टोडरमल जी से ले कर कवि बुधजन, पं. जयचन्द छावड़ा तथा पं. सदासुखदास कासलीवाल (उन्नीसवीं शताब्दी) ने किया।

श्रुतधर आचार्य कुन्दकुन्ददेव से लेकर आज तक जिन आचार्यों, मुनियों तथा पण्डितों ने अध्यात्म के विषय में लिखा है, उन्होंने अपनी किसी–न–किसी रचना में यह बात अवश्य लिखी है कि स्वभाव का भान हुए बिना पूजा, दान, शील, तप, संयम, जप आदि आत्मज्ञान न होने से वृथा हैं। स्वयं पं. दीपचन्दजी के शब्दों में–

तीरथ करत बहु भेष को बणाये कहा,
वरत–विधान कला क्रियाकांड ठानिये।
चिदानंद देव जाको अनुभौ न होय जोलों,
*तोलों सब करवो अकरवो ही मानिये।।१७।।***(उपदेश सिद्धान्तरत्न)**

तथा – *आप अवलोके बिना कछु नाहीं सिद्धि होत,*
कोटिक कलेशनि की करो बहु करणी।
क्रिया पर किए परभावनि की प्रापति है,
मोक्षपंथ सधे नाहीं बंध ही की धरणी।। **(ज्ञानदर्पण, १४)**

यथार्थ में विवेक के बिना क्रिया कैसी होती है? इसका वास्तविक चित्रण कवि ने प्रस्तुत सवैया में किया है।

यथा– *केऊ तो कुदेव मानें देव को न भेद जाने,*
केऊ शठ कुगुरु को गुरु मानि सेवे हैं।

हिंसा में धरम केऊ मूढ जन मानतु हैं,
धरम की रीति–विधि मूल नहीं बैठे हैं।
केऊ राति पूजा करि प्राणिनि को नाश करें,
अतुल असंख्य पाप दया बिनु लेवे हैं।
केऊ मूढ लागि मूढ अबै ही न जिनबिंब,
सेवे बार–बार लागे पक्ष करि केवे हैं।।

(उपदेशसिद्धान्तरत्न, पद्य ३५)

इन आध्यात्मिक कवियों की यह भी एक विशेषता है कि जहाँ क्रियाकाण्ड की सटीक समालोचना की है, वहीं मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य के त्याग, राजविरुद्ध, लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध कार्य तथा अन्याय छोड़ कर जिनधर्म में प्रवृत्ति करने का उपदेश दिया है। देव–दर्शन तथा जिन–पूजन के सम्बन्ध में जैनियों की यथार्थ प्रवृत्ति तथा लोभ–वृत्ति का परिचय देता हुआ कवि कहता है कि स्वयं तो सुवासित भात खाते हैं और मन्दिर में बाज़रा चढ़ाते हैं। पाप में करोड़ों खर्च करते हैं, पर धर्म में कौड़ी भी खर्च नहीं करते। जैसेकि–

धरम के हेत नैंक खरच जो वणि आवे,
सकुचे विशेष, धन खोय याही राह सों।
जाय जिन–मन्दिर में बाजरो चढावे मूढ,
आप घर मांहि जीमे चावल सराह सों।।
देखो विपरीत याही समैं माहिं ऐसी रीति,
चोर ही को साह कहे कहें चोर साह सों।।३६।।

तथा– *क्रोडा खरचे पाप को, कौडी धरम न लाय,*
सो पापी पग नरक को, आगे–आगे जाय।
मान बड़ाई कारणे, खरचे लाख हजार,
धरम अरथि कोड़ी गये, रोवत करें पुकार।। **उपदेश०, ४०-४१**

जिनदेव के समान जिनमूर्ति को न मानकर पंचामृताभिषेक करना, मूर्ति पर लेप चढ़ाना, पुष्प–फल चढ़ाने आदि का निषेध किया गया है तथा उनको वीतराग–आम्नाय के विरुद्ध कहा गया है।

रात्रि में पूजन करने तथा दीपक से आरती उतारने का तो लगभग सभी श्रावकाचारों में निषेध किया गया है। पण्डित आशाधरजी

के समय लगभग बारहवीं शताब्दी तक जिन–मन्दिर में सार्वजनिक रूप से पंचामृताभिषेक का प्रचलन नहीं था। अतः आचार्य जिनसेन ने "महापुराण" में, पं. मेधावी ने "धर्मसंग्रह श्रावकाचार" में, आचार्य सकलकीर्ति ने "प्रश्नोत्तर श्रावकाचार" मे, गुणभूषण ने "गुणभूषण श्रावकाचार" में तथा पं. राजमल्ल ने "लाटी संहिता" में पंचामृताभिषेक का वर्णन नहीं किया है। सत्संग, उपकार तथा नाम जपने का अवश्य समर्थन किया गया है।

शुद्धभाव- अध्यात्मप्रधान प्रायः सभी रचनाओं में मोक्षमार्ग, उपयोग तथा ध्यान के प्रकरणों में शुद्ध–अशुद्ध भाव का निरूपण किया गया है। पं. दीपचन्द जी कहते हैं कि उपयोग की चंचलता से भावों में अशुद्धता प्रकट होती है। उनके ही शब्दों में–

सहज आनंद पाइ रह्यो निज में लौ लाई,
दौरि–दौरि ज्ञेय में धुकाइ क्यों परतु है।
उपयोग चंचल किए ही अशुद्धता है,
चंचलता मेरे चिदानंद उघरतु है।
अलख अखंड जोति भगवान दीसतु है,
नै एक तैं देखि ज्ञाननैन उघरतु है।
सिद्ध परमात्मा सों निजरूप आत्मा है,
आप अवलोकि 'दीप' शुद्धता करतु है।। **(ज्ञानदर्पण १६)**

स्वसंवेदन ज्ञान में सहज अखण्ड ज्ञान–आनन्द स्वभाव का अनुभव करने वाले ज्ञानी पुरुष अपने आप में राग–द्वेष से रहित वीतराग, चिदानन्द चैतन्य का ही अवलोकन करते हैं। अतः उनको शुद्धोपयोगी कहा जाता है। यहाँ पर "शुद्धोपयोग" का अर्थ "वीतराग परिणति" (चरणानुयोग में वर्णित) ग्रहण नहीं करना चाहिए। क्योंकि जिनागम में 'शुद्धध्येयत्वात्', 'शुद्धालम्बनत्वात्' तथा 'शुद्धपरिणमनत्वात्' (चारित्र) इन तीन प्रकार से शुद्धता का वर्णन किया गया है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी जीव में ध्येय की शुद्धता से तथा कथंचित् आलम्बन की शुद्धता से शुद्धोपयोग घटित होता है। दूसरे शब्दों में आंशिक वीतरागता कही जाती है। "ज्ञानदर्पण" में कहा गया है –

पर परिणाम त्यागि तत्त्व की सँभार करे,
हरे भ्रम भाव ज्ञान गुण के धरैया हैं।
लखे आपा आप मांहि राग–दोष भाव नाहिं,
सुद्ध उपयोग एक भाव के करैया हैं।
थिरता सुरूप ही की स्वसंवेद भावन में,
परम अतेंद्री सुखनीर के ढरैया हैं।
देव भगवान सो सरूप लखे घट ही में,
ऐसे ज्ञानवान भवसिंधु के तरैया हैं।।

(ज्ञानदर्पण, पद्य २१)

इस प्रकार इन अध्यात्म रचनाओं में दृष्टि में शुद्ध स्वरूप भासित होने के कारण शुद्धता की दृष्टि से शुद्धोपयोगी सम्यग्दृष्टि का वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं, पं. दीपचन्द कासलीवाल स्पष्ट शब्दों में कहते हैं– **''भाव की अशुद्धता होने पर महाव्रती होने पर भी शुद्धोपयोगी तथा पवित्र आत्मा नहीं होता।''** वास्तव में ज्ञान–आनन्द स्वभाव की ओर ही जिसका उपयोग है और ज्ञानाभ्यास के द्वारा जो अपनी ज्ञान–निधि की सहज सम्हाल करता रहता है, वही ज्ञानी है। क्योंकि – *''ज्ञान उपयोग में सरूप की संभार है''।*

तथा– *बहु विसतार कहु कहाँ लौं बखानियतु,*
यह भववास जहाँ भाव की असुद्धता
त्यागि गृहवास है उदास महाव्रत धारें,
यह विपरीत जिनलिंग माहिं सुद्धता
करम की चेतना में शुभउपयोग सधे,
ताहीं में ममत ताके तातैं नाही सुद्धता।
वीतराग देव जाको यो ही उपदेश महा,
यह मोखपद जहाँ भाव की विशुद्धता।। ***(ज्ञानदर्पण, पद्य २६)***

अतः सद्गृहस्थ, त्यागी–व्रती उदासीन हो कर एक मात्र अखण्ड, ज्ञायक, सहज समरसी चिदानन्दप्रभु का अवलोकन करें– यही उपदेश है। कवि के शब्दों में–

देवन को देव सो तो सेवत अनादि आयो,
निजदेव सेवे बिनु शिव न लहतु है।

आप पद पायवे को श्रुत सो बखान्यो जिन,
तातैं आत्मीक ज्ञान सब में महतु है।। वहीं, २३
दया–दान–पूजा–सील संजमादि सुभ भाव,
ए हू पर जाने नाहिं इनमें उम्हैया हैं।
सुभासुभ रीति त्यागे जागे हैं सरूप मांहि,
तेई ज्ञानवान चिदानन्द के रमैया हैं।। ***वहीं, २५***

"उपदेश सिद्धान्तरत्न" में भी अशुद्ध भाव के त्याग का उपदेश इन शब्दों में वर्णित हैं–

भावना स्वरूप भाये भवपार–पाइयतु,
ध्याये परमात्मा को होत यों महतु हैं।
तातैं शुद्ध भाव करि तजिये अशुद्ध भाव,
यह सुख मूल महा मुनिजन कहतु हैं।। ***(पद्य ८३)***

आत्मानुभूति-

निज शुद्धात्मानुभूति सम्यग्दर्शन का ज्ञापक लक्षण कहा गया है। पण्डित कासलीवालजी इसे ही सम्पूर्ण ग्रन्थों का मूल कहते हैं। उनके ही शब्दों में–

सकल ग्रन्थ को मूल यह, अनुभव करिये आप।
आतम आनन्द ऊपजे, मिटे महा भव–ताप।।१४।।

(उपदेशसिद्धान्त)

आत्मानुभूति क्या है? इसके सम्बन्ध में पं. दीपचंद जी कासलीवाल "अनुभवप्रकाश" में कहते हैं–

"कोई कहेगा कि आज के समय में निज स्वरूप की प्राप्ति कठिन है, (क्योंकि) परिग्रहवन्त तो बहिरात्मा है, इसलिये स्वरूप प्राप्त करने की रुचि मिटा दी। किन्तु आज से अधिक परिग्रह चतुर्थ कालवर्ती महापुण्यवान नर चक्रवर्ती आदि के था, तब इसे तो अल्प है। वह परिग्रह जोरावरी से इसके परिणामों में नहीं आता। यह स्वयं ही दौड़–दौड़ कर परिग्रह में फँसता है। . . . . . अब श्रीगुरु प्रताप से सत्संग प्राप्त करो, जिससे भवताप मिटे। अपने को अपने में ही प्राप्त करे, ज्ञानलक्षण से पहचाने, अपना चिन्तवन करे, निज परिणति बढ़ाये, निज में लौ लगाये,

सहज स्वरस को प्राप्त करे, कर्मबन्धन को मिटाये, निज में निज परिणति लगाये, श्रेष्ठ चिद् गुणपर्याय को ध्याये, तब हर्ष पाये, मन विश्राम आये, जो स्वरसास्वाद को पाये, उसे निजानुभव कहा जाता है। जिनागम में ऐसी बात कही है कि स्वयं के अवलोकन से शुद्ध उपयोग होता है"। कहा है–

ज्ञान उपयोग योग जाको न वियोग हुओ,
निहचे निहारे एक तिहुँ लोक भूप है।
चेतन अनन्त रूप सासतो विराजमान,
गति–गति भ्रम्यो तोऊ अमल अनूप है।
जैसे मणिमांहि कोऊ काँचखण्ड माने तोऊ,
महिमा न जाय वामें वाही को सुरूप है।
ऐसे ही सम्भारि के सरूप को विचार्यो मैं,
*अनादि को अखण्ड मेरो चिदानन्द रूप है।***(ज्ञानदर्पण, पद्य ३०)**

"स्वानुभव होने पर निर्विकल्प सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। उसे स्वानुभव कहो या कोई निर्विकल्प दशा कहो या आत्मसम्मुख उपयोग कहो या भावमति, भावश्रुत कहो या स्वसंवेदन भाव, वस्तुमग्नभाव या स्व आचरण कहो, स्थिरता कहो, विश्राम कहो, स्वसुख कहो, इन्द्रियमनातीतभाव, शुद्धोपयोग, स्वरूपमग्न या निश्चयभाव, स्वरससाम्यभाव, समाधिभाव, वीतरागभाव, अद्वैतावलम्बीभाव, चित्त–निरोधभाव, निजधर्मभाव, यथास्वादरूप भाव– इस प्रकार स्वानुभव के अनेक नाम हैं, तथापि एक 'स्वस्वादरूप अनुभवदशा' ऐसा मुख्य नाम जानना।

जो सम्यग्दृष्टि चतुर्थ (गुणस्थान) का है, उसके तो स्वानुभव का काल लघु अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। (फिर) वह दीर्घकाल पश्चात् होता है। उससे देशव्रती का स्वानुभव रहने का काल अधिक है और वह स्वानुभव अल्पकाल पश्चात् होता है। सर्वविरति का स्वानुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। ध्यान से भी होता है तथा अति अल्पकाल के पश्चात् स्वानुभव सातवें गुणस्थान में बारम्बार होता ही रहता है।"

(अनुभवप्रकाश, पृ० ५२-५३)

यथार्थ में यह अखण्ड ज्ञानानन्द परम सुख का सहज स्वाभाविक धाराप्रवाहपन्थ है। स्वयं पं० कासलीवाल के शब्दों में–

अनुभौ अखण्ड रस धाराधर जग्यो जहाँ,
तहाँ दुःख दावानल रंच न रहतु है।
करम निवास भववास घटा भानवे को,
परम प्रचण्ड पौनि मुनिजन कहतु है।
याको रस पिये फिर काहू की न इच्छा होय,
यह सुखदानी सब जग में महतु है।
आनन्द को धाम अभिराम यह सन्तन को,
याही के धरैया पद सासतो लहतु है। ***(ज्ञानदर्पण, पद्य १२७)***

इतना ही नहीं, जो भी अर्हन्त, सिद्ध परमात्मा हुए हैं वे इस निज शुद्धात्मानुभव के प्रसाद से ही हुए हैं। कवि के शब्दों में–

पंच परम गुरु जे भए, जे होंगे जगमांहि,
ते अनुभौ परसाद तैं यामें धोखो नाहिं।
तथा – गुण अनन्त के रस सबै, अनुभौ रस के मांहि,
यातैं अनुभौ सारिखो और दूसरो नाहिं।।१५३, १५०

''ज्ञानदर्पण'' के अन्त में रचना का प्रयोजन प्रकाशित करते हुए पं० कासलीवाल जी कहते हैं–

आपा लखवे को यहै, दरपणज्ञान गिरंथ,
श्री जिनधुनि अनुसार है, लखत लहे शिवपंथ।
परम पदारथ लाभ ह्वै, आनंद करत अपार;
दरपणज्ञान गिरंथ यह, कियो 'दीप' अविकार।।

(ज्ञानदर्पण, १६४, १६५)

वास्तव में यह चिदानन्द चैतन्य विज्ञान घन ही ज्ञान की मूर्ति है। ज्ञानी इसके सिवाय अन्य किसी की उपासना नहीं करता है। स्वयं उनके शब्दों में–

ज्ञानमई मूरति में ज्ञानी ही सुथिर रहे,
करे नहीं फिरि कहुँ आन की उपासना।
चिदानन्द चेतन चिमत्कार चिन्ह जाको,
ताको उर जान्यो मेरी भरम की वासना।

अनुभौ उल्हास में अनंत रस पायो महा,
सहज समाधि में सरूप परकासना।
बोध–नाव बैठि भव–सागर को पार होत,
शिव को पहुँच करे सुख की विलासना।। **ज्ञानदर्पण, १७५**

यद्यपि होनहार सुनिश्चित है; जिस समय जिस विधि से जिस रूप जो कार्य होना है वह हो कर रहता है, किन्तु जैसा स्वभाव नियत है, वैसा ही उसका कार्य निश्चित है। परन्तु अज्ञानी जीव वस्तु के स्वभाव तथा उसके नियत परिणाम को उस रूप स्वीकार नहीं करता है, क्योंकि वह ऐसा समझता है कि मैं संयोगों को अपने अनुकूल परिणमा सकता हूँ। वस्तुतः यह पुरुषार्थ नहीं है, बल्कि मिथ्या कल्पना एवं कर्तृत्व बुद्धि की मिथ्या मान्यता है। यदि केवल प्रयत्न से ही साध्य की सिद्धि होती, तो द्रव्यलिंगी साधु विधि पूर्वक अनादि काल से अभी तक साधना कर चुके हैं, फिर भी उनको मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिये भवितव्यता का उल्लंघन नहीं हो सकता। फिर भी, सम्यक् नियति को मानने वाले जैनी योग्य निमित्त की सन्निधि में सम्यक् पुरुषार्थ को भी स्वीकार करते हैं। यथार्थ में पाँचों ही समवाय के होने पर कार्य की भलीभाँति सिद्धि होती है। जिनवाणी तो वस्तु–व्यवस्था एवं उसकी मर्यादा का व्याख्यान करती है। अतः ऐसा नहीं समझना चाहिए कि सम्यक् नियति को मानने वाले पुरुषार्थ का उपहास करते हैं। पुरुषार्थ के बिना तो सिद्धि नहीं है; परन्तु पुरुषार्थ सम्यक् होना चाहिए। पं० दीपचन्द जी के शब्दों में–

मोक्षवधू ऐसे जो तो याके करमांहि होय,
तो केवली के वैन तो सुने हैं अनादि के।
जतन अगोचर अपूरव अनादि को है,
उद्यम जे किए जे जे भए सब वादि के।
तातैं कहा सांच को उथापतु है जानतु ही,
भोरो होय बैठो वैन मेटि मरजादि के।
जो तो जिनवाणी सरधानी है तो मानि–मानि,
वीतराग वैन सुखदेन यह दादि के।। **(ज्ञानदर्पण, १४०)**
उद्यम के डारे कहूँ साध्य–सिद्धि कही नाहिं,
होनहार सार जाको उद्यम ही द्वार है।

उद्यम उदार दुख–दोष को हरनहार,
उद्यम में सिद्धि वह उद्यम ही सार है।
उद्यम बिना न कहूँ भावी भली होनहार,
उद्यम को साधि भव्य गए भवपार हैं।
उद्यम के उद्यमी कहाए भवि जीव तातैं,
*उद्यम ही कीजे कियो चाहे जो उद्धार है। **(ज्ञानदर्पण, १४१)***

यथार्थ में पुरुषार्थ वही है जो साध्य की सिद्धि करा देवे। साध्य की सिद्धि पर के लक्ष से तथा पर के साधन से कदापि नहीं हो सकती है। स्वभाव का लक्ष त्रिकाली सहज नियत स्वभाव को समझे बिना नहीं हो सकता। अतः नियति और पुरुषार्थ को सापेक्ष रूप से मानने में कोई विरोध नहीं है। इसी तथ्य को पं० दीपचन्द कासलीवाल सांकेतिक भाषा में इस प्रकार कहते हैं–

सकल उपाधि में समाधि जो सरूप जाने,
जग की जुगति माहिं मुनिजन कहतु हैं।
ज्ञानमई भूमि चढ़ि होई के अकंप रहे,
*साधक ह्वै सिद्ध तेई थिर ह्वै रहतु हैं।। **(ज्ञानदर्पण, १४३)***

वास्तव में अपने स्वभाव में लीन रहना–यही यथार्थ पुरुषार्थ है। जो नियत स्वभाव को स्वीकार नहीं करेगा, तो वह कैसे अपने में स्थिर रह सकता है? स्थिरता तो ध्रुव के आश्रय से ही आ सकती है। अस्थिर के आलम्बन से स्थिरता कैसे हो सकती है? अतः त्रैकालिक ध्रुव निष्क्रिय चिन्मात्र ज्ञायक ही परम तत्त्व है। ऐसे चिदानन्द देव के आश्रय से ही निज शुद्धात्मा की उपलब्धि हो सकती है। इसलिये निज स्वभाव को साधना ही सबसे महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है। कवि के शब्दों में–

एक अभिराम जो अनंत गुणधाम महा,
सुद्ध चिदजोति के सुभाव को भरतु है।
अनुभौ प्रसाद तैं अखंड पर देखियतु,
*अनुभौ प्रसाद मोक्षवधू को वरतु है।। **(ज्ञानदर्पण, १४४)***

अपने पद तथा स्वभाव के अनुसार चलना ही पुरुषार्थ है। यद्यपि आत्मा में अनन्त गुण हैं, किन्तु मोक्ष–मार्ग में ज्ञान की ही मुख्यता है।

अतः व्यवहार से पुरुषार्थ का साधक उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं– वस्तु का सामान्य अवलोकन दर्शन तथा विशेष अवलोकन ज्ञान है। उपयोग के इन दो भेदों के कारण आचरण के भी दो भेद कहे गए हैं–

सामान्य स्व वस्तु सत्ता की सम्यक् प्रतीति रूप सम्यक्त्वाचरण तथा विशेष रूप से स्व वस्तु में स्थिरता रूप आचरण चारित्राचरण है। इस प्रकार सामान्य, विशेष के भेद से आचरण के दो भेद हैं।

(आत्मावलोकन, पृ० १०१)

चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र 'अंकुर' रूप में गर्भ में रहता है, बाहर में प्रकट नहीं होता है। व्यवहार चारित्र पंचम गुणस्थान में देश चारित्र रूप से प्रकट होता है। सकल चारित्र संयम के धारी मुनि के ही होता है।

विनय मोक्ष का द्वार है-

पं. दीपचन्द कासलीवाल "उपदेश सिद्धान्त रत्न" में अर्हन्त, सिद्ध, श्रुत, सम्यक्त्व, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनबिम्ब, जिनधर्म तथा चतुर्विध संघ इन दश की पाँच प्रकार से विनय करने का स्पष्ट विधान करते हैं। वे कहते हैं– धर्म का मूल विनय है। जिनदेव के नाम–स्मरण की भी बड़ी महिमा है। कवि के शब्दों में–

नाम अविकार पद दाता है जगत माहिं,
नाम की प्रभुता एक भगवान जानी है।।५६।।
महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की,
ताके सम तीर्थंकर देव जी की मानिए।
तीर्थंकरदेव मिलें दसक हजार ऐसी,
महिमा महत एक प्रतिमा की जानिए।
सो तो पुण्य होय तब विधि सौं विवेक लिए,
प्रतिमा के ढिंग जाय सेवा जब ठानिये।
नाम के प्रताप सेती तुरत तिरे हैं भव्य,
नाम–महिमा विनै तैं अधिक बखानिये।। **(उपदेश०, ६०)**

जहाँ पं० दीपचन्द कासलीवाल जिन–नामस्मरण, जिनभक्ति–पूजा विनय आदि को गृहस्थ के लिए आवश्यक बताते हैं, वहीं यह भी

कहते हैं कि जन सामान्य रुढ़ि की भाँति इनका पालन करते हैं, वास्तविक विधि नहीं जानते हैं। उनके की शब्दों में–

मूढ़न को मूढ़ महारुढ़ि ही में विधि जाने,
साँच न पिछाने कहो कैसे सुख पावे है।।५१।।
माया की मरोर ही तैं टेढ़ो–टेढ़ो पांव धरे,
गरव को खारि नहीं नरमी गहतु है।
विनै को न भेद जाने विधि न पिछाने मूढ़,
अरुझयो बड़ाई में न धरम लहतु है।। **(उपदेश०, ५२)**

वास्तविकता यह है कि इन बाह्य आलम्बनों के होने पर भी यदि अन्तरंग में सच्चा प्रेम न हो, तो शारीरिक क्रियाओं के होने पर भी परम सुख रूप फल की प्राप्ति नहीं होती। अतः पं० कासलीवालजी कहते हैं कि निज शुद्धात्म स्वभाव का भान, परिचय तथा प्रीति हुए बिना आत्मा का श्रद्धान नहीं होता और बिना प्रतीति के ज्ञानानन्द रस नहीं ढलता है। उनके ही शब्दों में–

जहाँ प्रीति होय याकी सोई काज रसि पडे,
बिना परतीति यह भवदुःख भरे है।
तातैं नाम माहिं रुचि धर परतीति सेती,
सरधा अनाये तेरो सबै दुख टरे है। **(उपदेश०, पद्य ६१)**

आत्मध्यान- वर्तमान काल में आत्मध्यान या योग–साधना के लिए तरह–तरह के शिविर तथा ध्यान–साधना–केन्द्र होने लगे हैं। यथार्थ में आत्मध्यान के लिए निज स्वभाव ही साधन है। ध्यान की सिद्धि न तो आसन से है, न जप से है, न भोजन–पान से है और न किसी बाहरी आलम्बन से है। ये सभी प्रकार के बहिरंग अवलम्बन ध्यान में तभी सहायक हो सकते हैं, जब इन सब का लक्ष्य छोड़ कर एक मात्र परम निरपेक्ष परमात्मतत्त्व का, निरालम्बी का अवलम्बन लिया जाए। कवि के शब्दों में–

पर की कलोल में न सहज अडोल पावे,
याही तैं अनादि कीना भव भटकावना। **(स्वरूपानन्द, पद्य १६)**

तथा– *विधि न निषेध भेद कोउ नहीं पाइयतु,*
वेद न वरण लोकरीति न बताइये।
धारणा न ध्यान कहुँ व्यवहारी ज्ञान कह्यो,
विकलप नाहिं कोउ साधन न गाइये। ***(ज्ञानदर्पण, १७७)***

वस्तुतः स्वसंवेदन ज्ञान में न क्रोध है, न मान है, न माया है और न लोभ है, पुण्य–पाप किंवा शुभ–अशुभ भाव भी नहीं है तथा किसी प्रकार का विकल्प नहीं है। कहा है–

स्वसंवेदन ज्ञान में न आन कोउ भासतु है,
ऐसो बनि रह्यो एक चिदानन्द हंस है।

यही नहीं,

मार्गदर्शक :– आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जोग न जुगति जहाँ भुगति न भावना है,
आवना न जावना न करम को वंस है। ***(ज्ञानदर्पण, १७६)***

जिनागम में ध्यान चार प्रकार के कहे गए हैं– आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। प्रथम दो ध्यान अशुद्ध ध्यान हैं। संसार में कोई जीव बिना ध्यान का नहीं है। जब संसार, राग–द्वेष, विषय–कषाय तथा पर पदार्थों से सम्बन्धित विभाव भाव की चिन्ता, स्मरण का चिन्तन, मनन तथा अनुभवन होता है, तब शुद्धध्यान होता है। अशुद्ध ध्यान संसार को उत्पन्न करने वाला है। पं० कासलीवालजी के शब्दों में–

एक अशुद्ध जु शुद्ध है, ध्यान दोय परकार।
शुद्ध धरे भवि जीव है, अशुध धरे संसार।।
शुद्ध ध्यान परसाद तैं, सहज शुद्ध पद होय।
ताको वरणन अब करों, दुख नहीं व्यापे कोय।।

(स्वरूपानन्द, २८, २६)

इतना अवश्य है कि सभी ध्यानशास्त्र "आत्मध्यान" का ही उपदेश देते हैं। क्योंकि पाँचों परमेष्ठी जिस शुद्धात्मा का आश्रय करते हैं, वही शुद्धात्मा हमारे लिए भी ध्येय है।

वस्तु-सिद्धि- वस्तु की सिद्धि स्वयं उपादान से है। वस्तुतः उपादान के दो भेद हैं– क्षणिक उपादान तथा शाश्वत उपादान। "अष्टसहस्त्री" (पृ० २१०) में कहा गया है–

त्यक्तात्यक्तात्मरूपं यत् पूर्वापूर्वेण वर्तते।
कालत्रयेपि तदद्रव्यमुपादानमिति स्मृतम्।।
यत्स्वरूपं त्यजत्येव यन्न त्यजति सर्वथा।
तन्नोपादानमर्थस्य क्षणिकं शाश्वतं यथा।।

अर्थात्- द्रव्य में गुण तो पहले से ही विद्यमान रहते हैं, किन्तु परिणाम नये–नये होते रहते हैं। जो त्यक्तस्वभाव पर्याय रूप है, उसे परिणाम कहते हैं। वह व्यतिरेक स्वभाव है। जो अत्यक्तस्वभाव है, वह गुणरूप तथा अन्वय स्वभाव है। वस्तुतः द्रव्य परिणाम को त्यागता है, किन्तु गुण को नहीं छोड़ता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि परिणाम क्षणिक उपादान है और गुण शाश्वत उपादान है। वस्तु उपादान से स्वतः सिद्ध है। ***(चिद्‌विलास, पृ० ४०, ४१)***

"चिद्‌विलास" के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पं० दीपचन्द कासलीवाल प्राकृत, संस्कृत, दर्शनशास्त्र, न्यायशास्त्र एवं अध्यात्मशास्त्रों के महान् ज्ञाता थे तथा सभी उपयोगी महान् शास्त्रों से सार ग्रहण कर उन्होंने "अध्यात्मपंचसंग्रह" आदि ग्रन्थों की रचना कर ढूँढारी किंवा देशी भाषा के माध्यम से घर–घर में अध्यात्म का प्रचार–प्रसार किया था।

प्रस्तुत प्रकाशन हेतु भाई श्री पं० राजमलजी का विशेष आभार है, जिनकी सतत प्रेरणा तथा अनुरोध से मैं इस संकलन के सम्पादन में प्रवृत्त हुआ। यही नहीं, नये–नये अर्थ सुझाने में भी उनका मार्ग–दर्शन रहा है जो कहीं–कहीं उपयोगी भी सिद्ध हुआ है। अधिक क्या कहूँ? सम्पादन से ले कर प्रकाशन तक का सम्पूर्ण प्रदेय उनका ही है। यदि इसके सम्पादन में तथा शब्दार्थ में कोई भूल रह गई हो, तो विद्वान् पण्डित तथा सुधी पाठक वर्ग मुझे अल्पज्ञ समझ कर यथास्थान सुधार कर लेंगे। आशा है विद्वत्–जगत् में अवश्य ही यह चर्चित होगा।

अन्त में पं. सदासुख ग्रन्थमाला के सर्वस्व श्रेष्ठिप्रवर, स्वनामधन्य श्री पूनमचन्द जी लुहाड़िया तथा मन्त्री श्री हीराचन्द बोहरा जी का आभार किन शब्दों में ज्ञापित करूँ? उन्होंने मुक्त भाव से सहज ही प्रकाशन की व्यवस्था कर लोकोपयोगी महान् कार्य किया है। अतः विशेष आभार है। श्रीमान् माणिकचन्द जी लुहाड़िया का भी आभारी हूँ, जिनकी प्रेरणा से परिशिष्ट में "आत्मावलोकन स्तोत्र" संलग्न किया गया है।

-देवेन्द्रकुमार शास्त्री

परमात्मपुराण

दोहा

परम अखंडित ज्ञानमय, गुण अनंत के धाम।
अविनासी आनंद अज,[1] लखत लहे निज ठाम।।१।।

अचल, अतुल, अनंत महिमामंडित, अखंडित त्रैलोक्य शिखर परि विराजित, अनुपम, अबाधित शिवद्वीप है। तामें आतम–प्रदेस असंख्यदेस हैं, सो एक–एक देस[2] अनंत गुण–पुरुषनि करि व्याप्त है। जिन गुण–पुरुषन के गुण–परिणति नारी है। तिस शिव द्वीप को परमातम राजा है। ताके चेतना–परिणति राणी है। दरशन, ज्ञान, चारित्र–ये तीन मंत्री हैं। सम्यक्त्व फौजदार हैं। सब देश का परिणाम कोटवाल है। गुणसत्ता मंदिर, गुण–पुरुषन के हैं। परमातम राजा का परमातम–सत्ता–महल वण्यां, तहां चेतना परिणति–कामिनी सों केलि करत परम अतीन्द्रिय, अबाधित आनंद उपजे है। गुण अपने लक्षण की रक्षा करे, तातैं यह सब गुण क्षत्रिय कहिये। अरु गुणरीति वरतना[3] व्यापार करे, तातैं वैश्य कहिए। ब्रह्मरूप सब हैं, तातैं ब्राह्मण कहिए। अपणी[4] परिणति वृत्ति करि आप को आप सेवे, तातैं शूद्र कहिए। ब्रह्म को आचरण सब गुण करे, तातैं ब्रह्मचारी। अपनी गुण–परिणति तिया[5] के विलास बिना पर परिणति नारी न सेवे है, तातैं परतिया त्याग ब्रह्मचारिज[6] के धारी ब्रह्मचारी है। अपने चेतनावान को धारी प्रस्थान किये, तातैं वानप्रस्थ है। निज लक्षण रूप निजगृह में रहे है, तातैं गृहस्थ है। स्वरूप को साधे, तातैं साधु कहिए। अपनी गुण–महिमा–रिद्धि

१ अजन्मा, सहज २ भाग, प्रदेश ३ परिणमना ४ अपनी ५ स्त्री, पत्नी ६ ब्रह्मचर्य

को धारे, तातैं रिषि कहिए। प्रत्यक्षज्ञान सब में आया, तातैं मुनि कहिए। परभाव को जीति लियो, तातैं यति कहिए। इन में जो विशेष है सो लिखिए है।

क्षत्रिय का वर्णन-

सब गुण परस्पर सब गुण की रक्षा करे है सो कहिए है। प्रथम सत्ता गुण के आधारि सब गुण हैं, तातैं सत्ता सब की रक्षा करे है। सूक्ष्म गुण न होता, तो चेतन सत्ता इन्द्रिय-ग्राह्य भये अतीन्द्रियत्व प्रभुत्व का अभाव होता, महिमा न रहती, तातैं सूक्ष्मत्व सब अतेन्द्री प्रभुत्व की रक्षा करे है। प्रमेयत्व गुण न होता, तो वीर्यादि सब गुण प्रमाण करवे जोग्य न होते, तातैं प्रमेयत्व सब का रक्षक है। अस्तित्व बिना सब का अभाव होता, तातैं सब की अस्तित्व रक्षा करे है। वस्तुत्व न होता, तो सामान्य विशेष भाव सब का न रहता, तातैं वस्तुत्व सब की रक्षा करे है। या प्रकार सब गुण में रक्षा करणे का भाव है, तातैं क्षत्रियपणा आया।

आगे वैश्यवर्णन करिये है-

अपनी-अपनी रीति[१] वरतना व्यापार सब करे है। दरशन देखवे मात्र, मात्र निर्विकल्प रीति-वरतना-स्वपर देखने की रीति-वरतना व्यापार करे है। सत्ता है लक्षण निर्विकल्प रीति वरतना विशेष द्रव्य है। रीति गुण है, रीति वरतना[२] पर्याय है, रीति वरतना व्यापार करे है। वस्तुत्व सामान्य-विशेष रूप वस्तुभाव निर्विकल्प रीति वरतना, ज्ञान में सामान्य विशेष रीति वरतना, सब गुण में सामान्य-विशेष रीति वरतना व्यापार कहिए। प्रत्येक

१ प्रकार, तरह २ परिणमन व्यापार

गुण प्रमाण करवे जोग्य निर्विकल्प रीति वरतना, गुण नै[1] प्रमाण करवे जोग्य विशेष वरतना, व्यापार प्रमाण गुण करे है। या प्रकार सब गुण में निर्विकल्प रीति अरु विशेष रीति वरतना व्यापार है, तातैं सब वैश्य कहिये।

आगे ब्राह्मण का वर्णन कीजिये है-

ज्ञान गुण निज स्वरूप[2] है। ब्रह्म ज्ञान[3] ते एक अंस हू अधिक ओछा[4] नाहीं। ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान बिना भये जड होय, तातैं जानपणा बिना सरवज्ञ न होइ। तब ब्रह्म की अनंत ज्ञायक शक्ति गये ब्रह्मपणा न रहे, तातैं ज्ञान ब्रह्म–व्यापक ब्रह्म रूप है, तातैं ज्ञान को ब्राह्मण संज्ञा भई। दरसन स्वरूपमय है, सर्वदर्शित्व शक्ति ब्रह्म में दरसन करि है, दरसन बिना देखने की शक्ति ब्रह्म में न होय, तातैं दरसन सब ब्रह्म में व्यापि ब्रह्म रूप होय रह्या है, तातैं ब्रह्म सरूप भया दरसन ब्राह्मण कहिये। प्रमेय गुण तैं सब द्रव्य, गुण, पर्याय प्रमाण करवे जोग्य हैं, तातैं प्रमेय ब्रह्मसरूप, तातैं प्रमेय ब्राह्मण भया। या प्रकार सब गुण ब्राह्मण भये।

आगे शूद्रसरूप गुण को बतावे हैं-

अपनी पर्यायवृत्ति[5] करि एक–एक गुण सब गुण की सेवा करे है, ताको वर्णन–सूक्ष्मगुण के अनंतपर्याय ज्ञानसूक्ष्म, दरसनसूक्ष्म, वीर्यसूक्ष्म, सत्तासूक्ष्म, सूक्ष्म गुण अपनी सूक्ष्मपर्याय न देता, तो वे सूक्ष्म न होते। तब स्थूल भये इन्द्रिय–ग्राह्य भजे जड़ता पावते, तातैं सूक्ष्म गुण अपनी सूक्ष्मपर्याय दे सब गुण

---

१ नय, २ अपना रूप, अपना गुण (क्वालिटी), ३ आत्मज्ञान, ४ कम, न्यून, ५ उत्पाद (उत्पन्न)– व्यय (विनाश) रूप कार्य–व्यापार के द्वारा

का स्थिति भाव सुद्ध यथावत कार्य संवारे हैं। यातैं सूक्ष्मगुण की सेवावृत्ति सधी, तातैं सूक्ष्मगुण शूद्र ऐसा नाम पाया। सत्तागुण के अनंतपर्याय सत्ता है लक्षण, पर्याय सब को दिये, तब सब गुण अस्तिभाव रूप भये अपना अस्तिभाव पर्याय दे; उनके अस्तिभाव राखन के कार्य संवारे। तातैं सत्ता उनके कार्य संवारने तैं उनकी सेवावृत्ति भई, तब सत्ता को शूद्र ऐसा नाम भया। या प्रकार सब गुण शूद्र भये।

आगे च्यारि आश्रम-भेद लिखिये हैं-

सब गुण ब्रह्म आचरण किये हैं, तातैं ब्रह्मचारी हैं। ज्ञान ब्रह्म एक है, तातैं ज्ञान ब्रह्म का आचरण किये है ज्ञान ब्रह्मचारी। दरसन ब्रह्मरूप, तातैं दरसन ब्रह्मचारी। वीर्य सब ब्रह्म की निहपन[1] राखे, तातैं ब्रह्म वीर्यशक्ति तैं ब्रह्म भया है। तातैं वीर्य ब्रह्म के आचरण रूप भया तातैं वीर्य ब्रह्मचारी, सत्ता ब्रह्मरूप तातैं सत्ता ब्रह्मचारी। या प्रकार सब गुण ब्रह्मचारी हैं।

आगे गृहस्थ-भेद लिखिये हैं-

ज्ञान निज ज्ञान सत्ता गृह में तिष्ठे है, तातैं ज्ञान गृहस्थ कहिये। दरसन अपने दरसनसत्ता गृह में स्थिति किये है; तातैं दरसन गृहस्थ है। वीर्य अपने वीर्यसत्ता गृह में निवसे है, तातैं वीर्य गृहस्थ है। सुख अपने अनाकुललक्षण सुखसत्ता गृह में स्थिति किये है; तातैं सुख गृहस्थ है। या प्रकार सब गुण गृहस्थ हैं।

आगे वानप्रस्थ-भेद कहिये हैं-

अपने निज 'वान'[2], में प्रस्थ कहिये तिष्ठे। 'वान' आपका निज

१ निष्पन्न, शक्ति, सत्ता, २ स्वरूप

रूप, तामें रहणा सो वानप्रस्थ, तातैं ज्ञान अपने जानपना रूप रहे। दरसन अपने द्रश्य चेतना रूप में स्थिति किये है। सत्ता सासता[1] लक्षण रूप में सदा विराजे है। प्रमेय अपने प्रमाण करवे जोग्य रूप में अवस्थान[2] करे है। या प्रकार सब गुण अपने निज रूप रहे हैं। ज्ञान का निज वान[3] ऐसा है। विशेष जाणन प्रकाश रूप भया है, अरु आप आप में जाननरूप परणया है। अपने जानन तैं अपनी सुद्धता भई। सरूप सुद्ध के भये सहज ज्ञायकता के विलास ने अनंत निज गुण का प्रकाश विकास्या, तब गुण गुण के अनंत परजाय भेद सब भासे, अनंत शक्ति की अनंत महिमा ज्ञान में प्रगट भई।

इहां कोई प्रश्न करे-

ज्ञेय प्रकाश ज्ञान में भया, उपचार तैं जानना है, अपने गुण का जानना कैसे है?

ताका समाधान-

पर ज्ञेय का सत जुदा है, निज गुण का सत ज्ञान के सत सौं[4] जुदा[5] नाहीं। ज्ञान की ज्ञायकता के प्रकाश में एक सत जान्या गया है। जो उपचार होय, (तो) विनके[6] जाने आनंद न होइ। (प्रश्न) आनंद होइ है, तो गुण विषै गुण उपचार क्यों कह्या? तहां समाधान—ज्ञान में दरसन आया सो ज्ञान दरसन रूप न भया, काहे तैं उसका देखना लक्षण सो ज्ञान में न होय। वीर्य का निहपति[7] करण[8] सामर्थ्य लक्षण ज्ञान में न होय। ऐसे अनंत गुण के लक्षण ज्ञान न धरे, तातैं लक्षण अपेक्षा उपचार, लक्षण विनके न धरे। अरु आये ज्ञान में कहे, तातैं उपचार सत्ता—भेद नाहीं। अनन्य (अन्यत्व) भेद तैं ज्ञानसत; दरसनसत;

---

१ अविनाशी, शाश्वत, २ स्थिति, ३ स्वरूप, ४ से, ५ भिन्न, अलग,
६ उनके, ७ निष्पत्ति, रचना, ८ करना

वीर्यसत; सुखसत; ऐसा कलपि करि[1] भेद कह्या, परि[2] पृथक्[3] भेद नाहीं। तातैं भेदाभेद विशेष सत लक्षण की अपेक्षा करि जानिये। ज्ञान द्रव्य-गुण-पर्याय निज सरूप को जाने; ज्ञान **ज्ञानको जाने, तहां आनंद अमृत-रस-समुद्र प्रगटे।** सब द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञान प्रकाशे तब प्रगटे। ज्ञान ने विनकी[4] महिमा प्रगट करी, तातैं ऐसा ज्ञान सरूप ज्ञानवान है, तामें ज्ञान रहे तब ज्ञान वानप्रस्थ कहिये। दरसनवान दरसन रूप सो सब द्रव्य-गुण-पयार्य ज्ञान प्रकाशे तब प्रगटे। ज्ञान ने विनकी महिमा प्रगट करी, तातैं ऐसा सरूप ज्ञानवान है, तामें ज्ञान रहे तब ज्ञान वानप्रस्थ कहिये। दरसनवान दरसन रूप सो सब द्रव्य-गुण-पर्याय का **सामान्य-विशेषरूप वस्तु का निर्विकल्प सत अवलोकन करे है।** तहां सब लक्षण भेदाभेद, उपचारादि रीति ज्ञान की नाई जानि लेणी। आनंद का प्रवाह निज अवलोकनि तैं होय है। निर्विकल्परस में भेदभाव विकल्प सब नहीं, निर्विकल्परस ऐसा है; तहां विकल्प नहीं।

प्रश्न इहां उपजे है-

जो दरसन दरसन को देखे सो तो निर्विकल्प ज्ञानादि अनंतगुण अवलोकन में विकल्प भया कि निरविकल्प रह्या? जो निरविकल्प कहोगे, तो पर दूजा गुण का दूजा लक्षण के देखवे करि निरविकल्प न रह्या, अरु विकल्प कहोगे, तो निरविकल्प दरसन कहना न संभवेगा।

ताका समाधान-

ज्ञेय का देखना तो उपचार करि वामें[6] आया। दरसन में और गुण दरसन बिना जो देखे, लक्षण करि तो उपचार सब के लक्षण देखे। सत्ता अभेद है ही, अनन्य भेद, पृथक् भेद

---

१ कल्पना करके २ किन्तु, ३ भिन्न, अलग, ४ उसकी, ५ समान, ६ उसमें

नाहीं–सब का निर्विकल्प सत्ता अवलोकन तातैं निर्विकल्प है। दरसन दरसन को देखे, दरसन की शुद्धता निर्विकल्प है। अपना निज देखना तो अपने द्रष्टा लक्षण सों व्यापक तन्मय लक्षण अभेद है। दरसन दरवि;[1] देखना गुण, देखवे रूप परिणमन पर्याय निश्चय अभेद, दरसन भेद, कथन मात्र में व्योहार है। निजरूप को देखते सब गुण का देखना तो है। धरे[2], देखवे मात्र गुण को है, आन[3] लक्षण न धरे। अपने स्वगुण के प्रकाश में आनगुण स्वजाति चेतना की अपेक्षा प्रकाशे। जिस सत में सो अपना गुण प्रकाश्या, तिस सत में सब गुण प्रकाशे, परि विनके लक्षण को धरता तो विकल्पी होता। अपना प्रकाश देखवे मात्र ज्यों का त्यों राखे है। आपनी दरसन रूप दरपन–भूमि में पर ज्ञेय विजाति होइ भासे है। निज जाति चेतना एक सत्ता ते प्रगटी सो सब गुण की दरसन प्रकाश के साथि जुगपत प्रगटी। अपना प्रकाश निर्विकल्प जैसा है, तैसा रहे है। विजाति पर ज्ञेय, स्वजाति पृथक् चेतना, ज्ञेय, अपृथक् चेतना, स्वजाति ज्ञानादि अनंत गुणादि ज्ञेय, सब लक्षण को न तजे। काहू को उपचार करि देखना, काहू को स्वजाति उपचार देखना। पृथक् भेद ते, काहू को अपृथक्ता करि देखना, अभेद चेतना जाति, तातैं ऐसा देखना है। तोऊ अपने निर्विकल्प प्रकाश लक्षण लिये अखंडित दरसन निर्विकल्प रहे है। यह दरसन 'वान'[4] कहिये रूप में रहे, तातैं दरसन वानप्रस्थ कहिये।

प्रमेय[5] सामान्य है; सब में व्यापक है। द्रव्य प्रमाण करवे जोग्य प्रमेय ते भया सब गुण प्रमाण करवे जोग्य प्रमेय की पर्याय ने किये; पर्याय प्रमेय ने प्रमाण करवे जोग्य किये। प्रमेय प्रमाण करवे जोग्य लक्षण को लिये है। जो प्रमेय न होता, तो सब

---

१ द्रव्य, २ धारण करे, ३ अन्य, दूसरा, ४ स्वरूप, ५ निर्णीत वस्तु

अप्रमाण होते; तातैं प्रमेय गुण अपने प्रमाण करवे जोग्य रूप भया है। सत्तागुण को प्रमाण प्रमेय ने किया। काहे ते? सत्ता सासता लक्षण को लिये है सो सम्यक्ज्ञान ने प्रमाण किया, तब प्रमेय नाम पाया।

कोई प्रश्न करे है-

सत्ता अपना लक्षण प्रमाण करवे जोग्य आपा लिये है। यहां प्रमेय करि प्रमाण करवे जोग्य काहे को कहो। सब गुण
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अपने-अपने लक्षण करि अपनी अनंत महिमा लिये प्रमाण करवे जोग्य हैं, प्रमेय ते काहे कहो?

ताको समाधान-

एक-एक गुण सब आन[1]गुण की सापेक्ष लिये हैं। एक-एक गुण करि सब गुण की सिद्धि है। चेतना गुण ने सब चेतना रूप किये। सूक्ष्मगुण ने सब सूक्ष्म किये, अगुरुलघु ने सब अगुरुलघु किये, प्रदेशत्व गुण ने सब प्रदेशी किये, तैसे प्रमेयगुण ने सब प्रमाण करिवे जोग्य किये। प्रमेयगुण ने विनके[2] लक्षण को प्रमाण करिवे जोग्य के वास्ते विनके लक्षण के मांही प्रवेश करि अभेद रूप सत्ता अपनी करि दई है। तातैं सब गुण प्रमाण करिवे जोग्य भये। जो सब गुण अपने लक्षण को धरते प्रमेय विनके मांहि न होता, तो अप्रमाण जोग्य होते। तातैं अन्योन्य[3] सापेक्ष सिद्धि है।

उक्तं च- *नाना स्वभावं संयुक्तं, द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।*
तत्त्वसापेक्षसिद्धयर्थं, स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु।।१।।

इहां फेरि प्रश्न भया-

प्रमेय की अभेद सत्ता सब गुण में कही, तो गुण में गुण नहीं 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' यह फाकी[4] सूत्र की झूठ होय, एक

---

१ अन्य, दूसरे, २ उनके, ३ परस्पर, ४ पंक्ति, लकीर

प्रमेय की अनंत सत्ता भई। एक गुण, एक लक्षण व्यापक न रह्यो।

ताको समाधान-

सत्ता तो एक है। एक ही सत्ता में अनंत गुण का प्रकाश है। एक-एक के प्रकाश गुण की विवक्षा करि गुण गुण का सत ऐसा नाम पाया। सत्ता भेद तो नांही; लक्षण एक-एक गुण का जुदा है, लक्षण रूप गुण न मिले, तातैं सत्ता अनन्यत्व करि भेद नांव[1] भया, पृथक् भेद न भया; तातैं[2] यह कथन सिद्ध भया। निश्चय सब का एक सत अनन्यभेद, लक्षण-गुण की अपेक्षा और नांव उपचार करि गुण गुण का कल्पा तो सत्ता भिन्न-भिन्न न भई; तातैं नाना नय-प्रमाण है, विरुद्ध नांही। एक प्रमेय अनंत गुण में आया, सो सत्ता एक ही अनंत गुण का प्रकाश तिस में, एक-एक प्रमेय प्रकाश सो ही प्रकाश प्रमेय का सब गुण में आया। काहे तैं आया? सो कहिए हैं। गुण एक-एक के असंख्य प्रदेश वे ही है, विनही[3] में सब गुण व्यापक है। प्रमेय हू व्यापक है। तातैं प्रमेय सब प्रदेश व्यापक रूप विसतर्‌या, तब सब गुण के प्रदेश सत में विसके[4] सत भया सो कहने में नांव भेद पाया। ये प्रमेय के, ज्ञानके, ये दरसन के, परि[5] वे जुदे-जुदे असंख्यात नाहीं, वे ही हैं। तातैं सब गुण का प्रदेश सत् एक भया, तातैं प्रमेय की अनंत सत्ता न भई। सत्ता तो कल्पी और कही, गुण के लक्षण जुदे के वास्ते[6] मूल सत्ता भेद नाहीं। अनंत गुण लक्षण रूप एक द्रव्य का प्रकाश अनंत महिमा मंडित सो है। वस्तु जनावने निमित्त जुदे-जुदे दिखाये। गुण गुण की अनंत शक्ति, अनंत पर्याय, अनंत महिमा, अनंत गुण का आधार भाव एक-एक गुण में पाइये। प्रमेय पर्याय करि अनंत गुण में व्यापक होई

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

१ नाम, २ इसलिये, इस कारण, ३ उन्हीं, ४ उसके, ५ परन्तु, ६ सत्ता में भेद नहीं है, किन्तु समझाने के लिए कल्पना से सत्ता में भेद कर अलग-अलग गुणों के लक्षण समझाये हैं।

वरते है; सत्ता अनंत नाही। गुण गुण के लक्षण प्रमाण करवे जोग्य प्रमेय पर्याय ते भये, तातैं प्रमेय–विलास कहाया। अर गुण ही को गुणी कहिये, तब सत्ता गुणी भया, सत्ता के सूक्ष्म गुण भया, सत्ता का अगुरुलघुगुण भया। वस्तुत्व गुणी भया, वस्तुत्व का प्रमेय गुण वस्तुत्व में है। वस्तुत्व का अगुरुलघु, सूक्ष्म अस्तित्व, प्रदेशत्व वस्तुत्व में पाइये, ऐसे अनंत गुणं हैं। जिस गुण का भेद कहिये तब बिस[1] गुण में अनंत गुण का रूप सधे है, तातैं सब भेद जाने ते तत्त्व पावे है अरु अनंत सुख पावे है।

आगे तीसरे प्रश्न का समाधान-

एक–एक गुण में एक–एक लक्षण व्यापक है। पर्याय की अपेक्षा अनंत गुण व्यापक हैं। जो पर्याय की अपेक्षा सब में न व्यापे तो सब को नास होई। सूक्ष्म को पर्याय सब में न होय तो सब स्थूल होय, अगुरुलघु सब में न होय तो सब हलके भारी होई, प्रमेय सब में न व्यापे तो प्रमाण करवे जोग्य न रहे, तातैं पर्याय का गुण सब गुण में है। मूल लक्षण एक–एक गुण का निज लक्षण पर्याय का धाम रूप एक है। ऐसा प्रमेय का भेद है। पर्याय करि अनंत गुण व्यापक। प्रमेय मूलभूत वस्तु एक गुण जानो, ऐसा प्रमेय 'वान' कहिए सरूप प्रमेय में रहे है सो प्रमेय वानप्रस्थ कहिए।

आगे वस्तुत्व का वानप्रस्थ कहिए है-

सामान्यविशेष रूप वस्तु है, वस्तु का भाव वस्तुत्व है। वस्तु सामान्य–विशेष धरे ताको कहिए–अनन्त गुण सामान्य–विशेष रूप है। ज्ञान सामान्य सो जानन मात्र स्वपरको जाने,

[1] उस

ज्ञान यह ज्ञान का विशेष है। जानन मात्र में दूजा भाव न आवे, तातैं सामान्य है। स्वपर के जानने में सर्वज्ञ शक्ति प्रगटे है, तातैं जानन मात्र में वस्तु का स्वभाव सधे है। स्वपर जानना कहे, ज्ञान की महिमा, अनन्त शक्ति परजाय रूप सब जानी परे[1] है।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अनन्त गुण की अनन्तशक्ति परजाय जाने तैं[2] अनन्त गुण की अनन्त महिमा जानी परी, तब ज्ञान करि सासता[3] आतम पदार्थ की महिमा जानी परी, तब सब गुण, द्रव्य की महिमा ज्ञान ने प्रगट करी। जैसे कोई कठेरा[4] काठी[5] बेचे है, वाने कबहू[6] चिंतामणि रतन पाया, तब अपने घर में धर्‌या, तब वाकरि[7] प्रकाश भया[8]। तब अपनी नारी[9] को कह्या–याके उजियारे[10] में रसोई करि, तेल तेल की गरज सरी[11]। बिना गुण जाने बहुत काल लगि[12] काठी ढोई। कबहू कोई पारखी पुरुष आया, ताने[13] दया करि[14] चिंतामणि की महिमा बताई, तब वाका सब्द (सुन) करि दारिद्र गया। जो पारखी पुरुष चिंतामणि की महिमा न जनावता, तो छती[15] महिमा अछती[16] होती; तैसे अनंत संसार के जीव अनंत महिमा अनंत गुण की न जाने हैं, तातैं दुखी भयं डोले हैं। जब श्रीगुरु पारखी मिले, तब अनंतगुण की अनंत महिमा बताई, तब जिसने भेद पाया सो संसार दारिद्र मेटि सुखी भया। ज्ञान करि जानी परी, वाकी[17] महिमा श्री गुरु ज्ञान ते जानि कही, ज्ञान वाके भये वाहूने[18] जानी; तातैं ज्ञान सब गुण की महिमा प्रगट करे है। ज्ञान प्रधान है। अनन्त गुण सिद्धन विषैं हैं, ते हू ज्ञान करि जाने हैं। ज्ञान सब गुण को प्रगट करे है, तब विनके गुण की महिमा प्रगटे है; तातैं ज्ञान की विशेषता कार्यकारी है। ऐसे ज्ञान सामान्यविशेष करि ज्ञान वस्तु नाम

---

१ जान पड़ती है २ जानने से ३ शाश्वत ४ लकड़हारा ५ लकड़ी ६ कभी ७ उसके द्वारा ८ हुआ ९ पत्नी १० उजाले, प्रकाश में ११ पूरी हुई, पूर्ण हुई १२ तक, १३ उसने, १४ करके १५ व्यक्त प्रकट १६ अप्रकट १७ उसकी १८ उसी ने

पाया। ज्ञान वस्तुत्व का 'वान' सरूपज्ञान वस्तुत्व में रहे है, तहां ज्ञान वस्तुत्व वानप्रस्थ कहिये।

आगे दरसन वस्तुत्व का वानप्रस्थ कहिये है-

दरशन देखने मात्र परणम्या दरसन का सामान्य स्वपर भेद जुदे देखे है–यह दरसन का विशेष है। दरसन न देखे पर को, तब सर्वदर्शित्व शक्ति न रहे। दरसन के अभाव होते निर्विकल्प सत्ता का अवलोकन न रहे, अनंत ज्ञेय पदार्थ का निर्विकल्प सत्ता सरूप अवलोकन मिटता। तातैं दर्शन सामान्य विशेष रूप वस्तु तिसका भाव दरसन वस्तु है। तिसका वान कहिये सरूप तिस में तिष्ठता सो दरसन वस्तुत्व वानप्रस्थ कहिये। ऐसे सब गुण का वस्तुत्व मिलि एक वस्तुत्व नाम गुण है, तिस मे रहना सो वस्तुत्व वानप्रस्थ कहिये।

आगे द्रव्यत्व का वानप्रस्थ कहिये है-

गुण पर्याय को द्रवे[1] सो द्रव्य कहिये। द्रव्य के भाव को द्रव्यत्व कहिये। ज्ञान जानन रूप है सो आतमा का स्त्रभाव है। जो आतमा जानन रूप न परणवता, तो जानना न होता, जानना न भये ज्ञान न होता, तातैं आतम के परिनमन ते ज्ञान भया, परिनमन वा[2] द्रवत्व गुण ते भया। द्रवत्व गुण के भये द्रव्य द्रवीभूत भया, जब द्रवीभूत भया तब द्रव करि परिणाम प्रगट किया। जब परिणाम प्रगट्या, तब गुण द्रव्य रूप परणया। गुण द्रव्य रूप परणया, तब गुण द्रव्य प्रगटे। तातैं द्रवत्व गुण ते सब का प्रगटना है, ऐसे अनंतगुण को परिणमे है। सो द्रवत्व गुण ते द्रव्य द्रवे, तब तो गुण परजाय प्रगटे अरु गुण द्रवे, तब गुण

१ ढले, बहे, सम्मुख हो, २ उस,

परिणति को धरि परिणति सो एक होइ परिणति द्रवे, तब दोउ मिले परिणति द्रवे, तब गुण द्रव्य को वेदे[1], सरूप लाभ ले द्रव्य द्रवे, परिणाम प्रगटे। गुण द्रवे, तब एक–एक गुण सब गुण में व्यापि अनंत को आधार होय है। सब गुण अन्योन्य मिलि एक वस्तु होइ। ये सब द्रव्य, गुण, परजाय जु हैं सो द्रवत ते[2] हैं। सामान्य रूप तो द्रवणे[3] रूप परिणम्या विशेष द्रव्य द्रवणगुण, द्रवण परजाय द्रवणा[4] सो सामान्य–विशेष द्रवणा मिलि द्रवत्व नाम भया। सो द्रवत्व अपने स्वरूप में रहे सो द्रवत्व वानप्रस्थ कहिए। ऐसे सब गुण का वानप्रस्थ–भेद जानिये।

आगे ऋषि, साधु, यति, मुनि, ये भिक्षुक के भेद हैं सो कहिये हैं-

एक–एक गुण में च्यारि भेद लागे हैं। प्रथम सत्ता गुण में कहिये है–तातैं सत्ता को रिषि संज्ञा होय, सत्ता सासती रिद्धि को लिये है। आप अविनासी है। सत्ता के आधार उत्पाद, व्यय, ध्रुव है। सत्ता अपनी सासत[5] रिद्धि द्रव्य को दई[6], तब द्रव्य सासता भया। गुण को दई, तब गुण सासते भये। ज्ञान का जानपणा गुण, ज्ञान द्रव्य, ज्ञान परिणति परजाय। ज्ञान स्वसंवेदी ज्ञान, ज्ञेय–ज्ञायक–ज्ञान, अपने आतमा के द्रव्य, गुण, परजाय का जाननहार, ऐसे ज्ञान को सासता[7] सत्ता गुण ने किया सो ज्ञानसत्ता है। ज्ञान सत्ता तैं ज्ञाने सासता, यह सासती रिद्धि ज्ञान को सत्ता गुण ने दी है। दरसन का सत तैं दरसन सासता है। दरसन सब परभाव स्वभावरूप सब ज्ञेय को देखे है, अपने आतमा के द्रव्य, गुण, पर्याय को देखे है। दरसन द्रव्य है, देखना

---

१ अनुभव करे, २ द्रवता के कारण ३ ढलने ४ ढलना ५ शाश्वत ६ दी गई, दी ७ शाश्वत, अविनाशी

गुण है, दरसन परणति परजाय है। जो दरसन न होता, तो ज्ञायकता न होती, ज्ञायकता मिटे, चेतना का अभाव होता। तातैं सकल चेतना का कारण एक दरसन गुण है। सर्वदर्शित्व महिमा को धरे दरसन है, ताको सासता दरसन सत्ता ने किया, यह सासते राखिवे की रिद्धि दरसन को सत्ता ने दीनी है, तातैं सत्ता की रिद्धि दरसन में है।

आगे द्रव्यत्व गुण को सत्ता-रिद्धि दी सो कहिये है-

द्रवत्व गुण करि द्रव्य–गुण–परजायन[1] को द्रवे। गुण–परजाय द्रव्य को द्रवे, द्रवीभूत द्रव्य के भया, तब द्रव्य परणया गुणन में द्रवे बिना परिणति न होती। द्रव्य सासता नित्य ज्यों था, त्यों न रहता, तब परिणति बिना उत्पाद करि स्वरूप लाभ था सो न होता, व्यय न होता, तब परिणति स्वरूप निवास न करती, ध्रुवता की सिद्धि न होती। उत्पाद–व्यय बिना ध्रुव न होता, तातैं परणति ते उत्पाद–व्यय, उत्पाद–व्यय ते ध्रुवसिद्धि, सो परिणति होना द्रवत्व ते, तातैं द्रव्य द्रवा, तब परिणति भई। गुण द्रवे, तब गुण–परिणति गुणन ते भई; सब गुण का जुगपत भाव गुण–परिणति ने किया।

यहां कोई प्रश्न करै है-

कि जुगपत गुण की सिद्धि परिणति ने करी, तो क्रमवरती[2] तैं जुगपत भाव कैसे सध्या?

ताका समाधान-

वस्तु जो है सो क्रम[3] सहभावी[4] भाव रूप है। गुण–परिणति क्रम गुण का है। गुण लक्षण सहभावी है। सब गुण सहभाव क्रमभाव को धरे है। गुण अपने लक्षण रूप सदा

---

१ पर्यायों, २ क्रमबद्ध या क्रमवर्ती पर्याय, ३ पर्याय, ४ गुण

सासते हैं सो विन गुण के लक्षण को गुण–परिणति सिद्ध करे है। द्रव्य गुणन में परणया, तब गुणपरिणति भई। द्रव्य गुण रूप न परणवता[1], तब गुण की सिद्धि न होती, यातैं गुण की सिद्धि परिणति कीजे है। गुण का वेदन गुण परिणति ने किया है। वेदन भाव ते गुण का सर्वस्वरस प्रगट है। सर्वस्व रस प्रगट गुण की सिद्धि है। गुण बिना गुणी नहीं, गुणी बिना गुण नहीं, यातैं गुण परणति बिना नहीं, परणति गुण बिना नहीं। यातैं परणति ते जुगपत गुण की सिद्धि है। ऐसे द्रव्यत्व गुणको सासती रिद्धि सत्ता ने दी। तातैं सत्ता की रिद्धि ते द्रवत्व विलास की सिद्धि है। वस्तुत्व गुण वस्तु के भाव को लिये है सो सासता है; सामान्य विशेष भावरूप वस्तु की सिद्धि करे है। सब गुण अपना सामान्य विशेष भाव धारि आप वस्तुत्व रूप भये। सामान्य प्रकाश, विशेष प्रकाश सामान्य विशेष ते है। सो सामान्य विशेष का विलास सब गुण करे है, वस्तु संज्ञा सब धरे हैं। सो सामान्य विशेष रूप वस्तुत्व विलास की सिद्धि सत्ता गुण ने सासता भाव दिया, ताते है। सो सत्ता की रिद्धि सासता[2] भाव सब को देहै। वीर्यगुण को वीर्यसत्ता ने सासताभाव दिया। वीर्य स्वस्वरूप निहपन्न[3] राखवे की सामर्थ्यरूप गुण वीर्यगुण निहपन्न राखे, द्रव्य–वीर्य द्रव्य को निहपन्न राखे। सामर्थ्यता अपनी करि पर्याय वीर्यपर्याय को निहपन्न राखवे को समरथ, वीर्यगुण का विलास वीर्य अपार शक्ति धरि करे है। ताकी सिद्धि एक वीर्यसत्ता ते भई है। ऐसे एक सत्ता की रिद्धि सब गुण में विसतरी है, तब सब सासते भये। यह सत्ता गुण की रिद्धि कही। ऐसी रिद्धि धारे है, तातैं सत्ता को ऋषीश्वर कहिये।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

१ परिणमता, २ शाश्वत, नित्य, ३ निष्पन्न, शक्ति

आगे सत्ता को साधु कहिये है-

मोक्षमार्ग को साधे सो साधु कहिये। सत्ता स्वपदको साधे। द्रव्यसत्ता द्रव्य को साधे, गुणसत्ता गुण को साधे, पर्यायसत्ता परजाय को साधे, ज्ञानसत्ता ज्ञान को साधे, दरसन सत्ता दरसन को साधे, वीर्यसत्ता वीर्य को साधे, प्रमेयत्वसत्ता प्रमेयत्व को साधे, ऐसे अनंतगुण की सत्ता अनंत गुण को साधे। द्रव्यसत्ता गुण को साधे, गुणसत्ता द्रव्यसत्ता को साधे। परजायसत्ता ते पर्याय है। परजाय उतपाद, व्यय, ध्रुव को करे। पर्याय बिना उतपाद, व्यय, ध्रुव (ध्रौव्य) न होय। उतपाद, व्यय, ध्रुव बिना सत्ता न होय; तातैं पर्याय सत्ता द्रव्यगुण को साधे। ज्ञानसत्ता न होय तो ज्ञान न होय, तब सब गुण, द्रव्य-पर्याय का जानपणा न होय। जानपणा न होय, तब द्रव्य, गुण-पर्याय का सर्वस्व को न जाने। विनका[1] सर्वस्व न जान्या, तब ज्ञेय नांव[2] भया। ज्ञान-ज्ञेय अभाव भये, वस्तु-अभाव होय। दरसन सत्ता न होय, तब दरसन का अभाव होय। दरसन अभाव ते देखना मिटे, तब ज्ञानविशेष बिना सामान्य न होय, तातैं सब को सामान्यविशेष सिद्ध करे हैं। बिना सामान्य विशेष नहीं, बिना विशेष सामान्य नहीं। तातैं दरशनसत्ता ते दरसन, दरसन ते ज्ञान, तब वस्तु की सिद्धि है।

प्रमेयसत्ता न होय, तो सब प्रमेय न रहे। तब प्रमाण करवे जोग्य द्रव्य, गुण, पर्याय न होय, तातैं सत्ता सब को साधे है। ऐसे अनन्तगुण की, द्रव्य, गुण, पर्याय न होय, तातैं सत्ता सब को साधे है। ऐसे अनन्तगुण की, द्रव्य की, पर्याय कीसिद्धि करे है। सत्तागुण, तातैं सो सत्ता ही साधक, तातैं साधु ऐसा नांव[3] पावे है।

---

१ उनका, २ नाम, ३ नाम

आगे सत्ता को यति कहिए-

असत[1] विकार को जीत्या, तातैं यति कहिये। सत्ता में असत्ता नाहीं, तातैं यति। ताका विशेष लिखिये है—

सत्ता में नास्ति अभाव भया, नास्ति के विकार जीत्ये, तातैं यति। ज्ञानसत्ता ने ज्ञान का नास्ति विकार मेट्या,[2] दरसनसत्ता ने दरसन का नास्तिपणा दूरि किया, वीर्य सत्ता ने अवस्तुत्व का अभाव किया। या प्रकार सब गुण की सत्ता प्रतिपक्षी[3] अभाव करि तिष्ठे है, तातैं, यति कहिए।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

आगे सत्ता को मुनिसंज्ञा कहिये है-

सत्ता अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष प्रकाश सासता लक्षण करि करे अथवा प्रत्यक्ष केवलज्ञान सत्ता धरे, तातैं मुनि कहिये।

आगे वस्तुत्व को रिषि आदि भेद लगाइये है, तामें रिषिवस्तुत्व को कहिये-

सामान्यविशेषरूप वस्तु ताके भाव को धरे वस्तुत्व है सो सब में व्यापक है। सब गुण में सामान्यविशेषभावरूप वस्तुपणा करि रिद्धि वस्तुत्व ने सब को दी है। जेते गुण हैं तेते सामान्यविशेषता रूप हैं। ज्ञान में जानपणा मात्र सामान्यभाव न होय, तो लोकालोक प्रकाशक विशेष कहां ते होय? तातैं सामान्य ते विशेष है, विशेष ते सामान्य है। सामान्यविशेषभाव रिद्धि वस्तु ते है। ऐसे ही दरसन देखवे मात्र न होय, तो लोकालोक का निरविकल्प सत्ता मात्र वस्तु न देखे, तातैं सामान्य विशेष धरे है। सब गुण सामान्यविशेषभाव रिद्धि धरे है। सो सब एक वस्तुत्व की रिद्धि फैली है। वस्तु द्रव्यरूप द्रव्यवस्तु

---

१ विभाव, विकारी भाव, २ दूर किया, अभाव किया, ३ विरोधी

गुणरूप, गुणवस्तु पर्यायरूप, पर्यायवस्तु सब वस्तुत्व ते हैं। संसार में वस्तु न होय, तो नाम[1] पदार्थ न होय।

इहां कोई प्रश्न करे है-

शून्य है नाम, शून्य भया वस्तु कहा[2] कहोगे?

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ताको समाधान-

एक शून्य आकाश है सो सामान्यविशेष लिये क्षेत्री[3] वस्तु हैं। आकाश क्षेत्र में सब रहे हैं। दूजो भेद यह जु अभावमात्र में सामान्य अभाव, विशेष अभाव, सामान्यविशेष तो है, परि अभाव मात्र है। सामान्यविशेष, सामान्यविशेष वस्तु में जैसे–तैसे अभाव में कहिए। अभाव को शून्यता तो है, परि नाम सामान्यविशेष ते अभाव को भयो है। तातैं सब सिद्धि सामान्यविशेष ते होय है। वस्तु के नाममात्र आवत ही सामान्यविशेषता ते अभाव ऐसा नाम पाया। जो नास्ति तैं सिद्धि न होती, तो नास्तिस्वभाव स्वभावन में न होता। सत्ता अस्ति इति सत् सामान्यसत् नास्ति अभाव सत्, विशेष सत्ता का कहना भया। जो नास्ति का अभाव न होता, तो सत्ता में अस्तिभाव न होता, तातैं अभाव ही ते भाव भया है। वस्तु के प्रकाश को वस्तुत्व करे, वस्तु जो है नास्ति नाहीं। वस्तु को ज्ञेय कहिए, ज्ञायक कहिए, ज्ञान कहिए सब प्रकाश एक चैतन्य वस्तु का है। वस्तुत्व पर्याय करि वस्तुत्व परिणामी है; परवस्तु करि अपरिणामी है। जीवन वस्तु करि जीव रूप है; जड परवस्तु करि जीवरूप नाहीं है। चेतनमूरति चेतनावस्तु करि है, जडमूरति नाहीं, तातैं अमूरति है। अपने प्रदेश की विवक्षा करि सप्रदेशी है; परप्रदेश नाहीं, तातैं अप्रदेशी है। वस्तु एक की अपेक्षा एक है, गुणवस्तु करि अनेक है। आपने प्रदेश की अपेक्षा क्षेत्री है; पर वस्तु उपजने का क्षेत्र नाहीं। अपनी

---

१ संज्ञा, २ कैसे, ३ क्षेत्रीय, प्रदेश को लिए हुए

पर्याय क्रिया करि क्रियावान है; परक्रिया न करे, तातैं अक्रियावान है। वस्तुत्वकरि नित्य है, पर्याय करि अनित्य है। आप अनन्तगुण को कारण है। आप को आप कारण है; जड़ को अकारण है। आप परिणाम का आप कर्त्ता है; पर परिणाम का अकर्त्ता है। ज्ञान वस्तु की अपेक्षा सर्वगत है, पर की अपेक्षा निश्चयनय पर में न जाय, तातें सर्वगत है। अपने प्रदेशलक्षण करि आप में प्रवेश आप करे है, निश्चय करि पर में प्रवेश नाहीं। वस्तुत्व करि वस्तुत्व नित्य है; पर्याय करि अनित्य है। वस्तुत्व करि अभेद है, पर्याय करि भेद है। वस्तुत्व करि अस्ति है, पर्याय करि नास्ति है। वस्तुत्व करि एक है, पर्याय करि अनेक है। वस्तुत्व करि अनादि अनन्त, पर्याय करि सादि सांत, इत्यादि अनन्त भेद वस्तुत्व के हैं। अनन्त गुण की महिमा वस्तुत्व ते है, ऐसी रिद्धि वस्तुत्व धारे है, तातैं रिषि कहिए।

आगे वस्तुत्व को साधु[1] आदि कहिये है-

वस्तुत्व सामान्य विशेषता दे करि सब द्रव्य–गुण–पर्याय को साधे है। आप परिणाम करि आप को साधे है, तातैं साधु कहिए है। अपने भाव में अवस्तुविकार न आवने दे, तातैं यति[2] कहिए; विकार जीते तातैं यति। ज्ञानवस्तु अज्ञानविकार न आवने दे, दरसन अदरसनविकार न आवने दे, वीर्य अवीर्यविकार न आवने दे, अतेंद्री[3], अनाकुल, अनुभव–रसास्वाद–उत्पन्नसुख दुखविकार न आवने दे। गुण, गुणका विकार अभाव भया; तातैं सब गुणवस्तुत्व यति नाम पाया। ज्ञानवस्तुत्व सब को प्रतक्ष करे, तातैं वस्तुत्वको मुनि कहिये।

आगे अगुरुलघु को च्यारि रिषि आदि भेद कहिए है-

अगुरुलघु गुण अनन्त रिद्धिधारी है। न गुरु कहिए भारी,

१ साधने वाला, शुद्ध स्वभाव साधक, २ निर्विकार साधु, ३ अतीन्द्रिय, आत्मानुभवी

न हलका; द्रव्य जैसे का तैसा अगुरुलघु ते है। पर्याय जैसी की तैसी अगुरुलघु ते है। ज्ञान न हलका, न भारी, दर्शन न हलका, न भारी, वीर्य न हलका, न भारी, प्रमेय न हलका, न भारी, सब गुण न हलके, न भारी। अगुरुलघु गुण की रिद्धि सब गुणन में आई, तातैं सब ऐसे भये। षट्वृद्धि हानि–विकार अगुरुलघु ते भया, तातैं सब द्रव्य गुण की सिद्धि, तातैं सब जैसे के तैसे पाइये, सोई कहिये है–सिद्ध के अनंतगुण में एक सत्तागुण रूप सिद्ध[1] परणवे, तहां अनंतवे भाग परणमन की वृद्धि कहिये। असंख्यात गुण में एक वस्तुत्व रूप परणवे ऐसा कहिये, तब असंख्यात भाग परणमन की वृद्धि कहिये। आठ (गुण) में सम्यक्तरूप परणमे है ऐसा कहिये, तब संख्यात भाग परणमन की वृद्धि कहिये। आठ गुण रूप परणमे है ऐसा कहिये, तब संख्यात गुण परणमन की वृद्धि कहिये। असंख्यात गुण रूप परणमे[3] है ऐसा कहिये, तब असंख्यात गुण परणमन की वृद्धि कहिये। अनंतगुण रूप सिद्ध परणमे है ऐसा कहिए, तब अनन्तगुण परणमन की वृद्धि भई। ऐसे षट्वृद्धि भई। परणमन[4] वस्तु में लीन भया, तहां हानि भई। भेद वृद्धि मिटि गई, तातैं हानि ऐसा नाम पाया। इन वृद्धिहानि करि वस्तु ज्यों है त्यों रहे है। षट्वृद्धि में सब गुणरूप परणया, तब गुण का सरूप प्रगट परणये ते भया। न परणमता, तो गुण न प्रगटते, तातैं वृद्धि गुण को राखे है। हानि न होती तो वस्तु का रसास्वाद ले परणाम लीन न होता। परणामलीनता बिना द्रव्य रसास्वाद सों तृप्त न होता। तब रसास्वाद की तृप्ति बिना द्रव्य द्रव्य की स्पष्टता न धरता, तब द्रव्यपणा न रहता। तातैं द्रव्य के गुण के राखिवे को वृद्धि–हानि द्रव्य में परणाम[5] द्वारा है, तातैं

१ कर्मों से रहित, निरंजन, पूर्ण शुद्ध, २ तन्मय, ३ लीन, तन्मय, ४ परिणमन करते, ५ परिणाम

अगुरुलघु तैं सब सिद्धि भई। यह सब सिद्धि करने की रिद्धि अगुरुलघु लिये है। अनन्त गुण, द्रव्य, पर्याय की सिद्धि अगुरुलघु ने कीनी। तातैं ऐसी रिद्धि का धारक अगुरुलघुगुण रिषि कहिये।

आगे अगुरुलघु को साधु कहिये-

यह अगुरुलघु सब को साधे है, तातैं साधुसंज्ञा भई। वृद्धि–हानि ते गुण जैसे के तैसे रहे, तब न हलके होय न भारी होय। तब सब का साधक भया, तब साधु कहिये। आप को आप की परणति ते साधे, साधु है।

आगे अगुरुलघु को यति कहिये है-

हलका–भारी विकार जीति अपने सुभाव (में) निवसे है। जो हलका होता, तो पवन में उड़ता, भारी होता तो अधोपतन होता, तातैं ऐसे विकार का अभाव करि आपकी यति[1] वृत्ति आप प्रगट करी। आप के विकार मेटे और गुण के विकार मेटे। यति आप का विकार मेटे, पर का विकार मेटे, तातैं यति संज्ञा अगुरुलघु को कहिये।

आगे अगुरुलघु को मुनिसंज्ञा कहिये है-

आप को आप प्रतक्ष करे, ज्ञान का अगुरुलघु में ज्ञान प्रतक्ष आया, तब अगुरुलघु प्रतक्ष ज्ञान का धारी भया, तातैं प्रतक्षज्ञानी को मुनिसंज्ञा है। तातैं मुनि अगुरुलघु को मुनि कहिये। च्यारि भेद अगुरुलघु में भये।

आगे प्रमेय[2] को च्यारि भेद लगाइये है सो कहिये है-

प्रमेयत्व ने सबको प्रमाण कहवे जोग्य किये है। द्रव्य प्रमाण करवे जोग्य गुण प्रमाण करवे[3] जोग्य[4] पर्याय प्रमाण जोग्य

---

१ मुद्रित पाठ "जती" है, २ प्रमाण करने योग्य, ज्ञान का विषय, ३ करने, ४ योग्य

प्रमेय ने किये है। प्रमेय बिना वस्तु प्रमाण जोग्य न होय। अप्रमाण दूरि करने को प्रमाण किये, ते प्रमाणजोग्य प्रमेय राखे है। अनंत गुण में लक्षण प्रमाण करवे जोग्य; प्रदेश प्रमाण जोग्य; सत्ता प्रमाण जोग्य, गुण को नाम प्रमाण जोग्य, क्षेत्र प्रमाण जोग्य, काल प्रमाण जोग्य, संख्या प्रमाण जोग्य, स्थान सरूप प्रमाण जोग्य, फल प्रमाण जोग्य, भाव प्रमाण जोग्य प्रमेयवस्तुत्व प्रमाण जोग्य, प्रमेयद्रव्यत्व प्रमाण जोग्य, प्रमेय अगुरुलघुत्व प्रमाण जोग्य अनंतगुणप्रमेय प्रमाण जोग्य भये, सो सब प्रमेय गुण की रिद्धि फैली है। प्रमय ते प्रमाण की प्रसिद्धता है। प्रमाण ते प्रमेय है। प्रमेय प्रमाण दोउन ते वस्तु प्रसिद्ध प्रगट ठहराइये है। जैसे तीर्थंकर सरवज्ञ[1] वीतराग देवाधिदेव प्रमाण जोग्य है, विनको वचन प्रमाण जोग्य है। तैसे वस्तु प्रथम प्रमाण जोग्य है[2], तो गुण प्रमाण जोग्य होय। प्रमेय सब सरूप की सर्वस्वता को प्रमाण करवे जोग्य करे है। तातैं ऐसी रिद्धि अखंडित धारे, तातैं प्रमेय रिषि कहिये।

आगे प्रमेय को साधु संज्ञा कहिये है-

प्रमेय परणाम करि आपरूप को आप साधे, तातैं साधु, सब गुण प्रमाण करवे जोग्य ता करि साधे तातैं साधु है। प्रमेय विकार को आवने न दे, तातैं यति। दरसन का अदरसनविकार दरसनप्रमेय न आवने दे। ज्ञान का अज्ञानविकार ज्ञानप्रमेय न आवने दे। वीर्य का अवीर्यविकार वीर्यप्रमेय न आवने दे। अतेन्द्री[3] अनंतसुख भोग का इन्द्रीनि तैं सुखादि दुखविकार सो अतेन्द्री–भोगप्रमेय न आवने दे। सम्यक्त[4] निर्विकल्प यथावत् सम्यक् निश्चयरूप निजवस्तु का सम्यक्त, ताका विकार मिथ्यात

१ सर्वज्ञ. २ हो. ३ अतीन्द्रिय. ४ सम्यक्त्व, आत्मश्रद्धान

को सम्यक्तप्रमेय न आवने दे। ऐसे अनंत गुणविकार को अनंत गुण प्रमेय न आवने दे। एक यतीपद प्रमेय ने धर्‍या, तातैं विकारता प्रमेय ने हरी, तातैं यती[1] प्रमेय को कहिये। प्रमेय ज्ञान का तामें अनंतज्ञान आया, तातैं मुनि प्रमेय को कहिये। सब गुण को ज्ञान प्रत्यक्ष किया, ज्ञान प्रमेय में ज्ञान; तातैं प्रमेय मुनि भया।

ऐसे ज्ञानगुण को च्यारि भेद कहिये है-

ज्ञान को रिषि संज्ञा काहे ते भई सो कहिये है–ज्ञान आपणा जानपणा का स्वसंवेदन विलास लिये है। ज्ञान के जानपणा है, तातैं आप को आप जाने है। आप के जाने आप सुद्ध है। आनंदअमृतवेदना ज्ञानपरणति द्वारा ते आप ही आप आप में अनाय[2] रसास्वादु लेहैं; जिसके उपचार मात्र में ऐसा कहिये। ज्ञान में तिहूं काल संबंधी ज्ञेयभाव प्रतिबिंबित भये सर्वज्ञता भई। लोकालोक असद्‌भूत उपचार करि ज्ञान में आये। ज्ञान अपने सुभाव करि थिर है, जुगप्त[3] है, अखण्ड है, सासता है, आनन्दविलासी है, विशेष गुण है, सब में प्रधान है। अपने पर्याय मात्र करि अनन्त पदार्थ का भासक है। वीर्यगुण दर्शन को निराकार निहपन्न राखवे की सामर्थ्यता धरे। ज्ञान निहपन्न राखवे की सामर्थ्यता धरे। प्रमेय निहपन्न राखवे की सामर्थ्यता धरे। प्रदेश निहपन्न राखवे की सामर्थ्यता धरे। सब द्रव्य, गुण, पर्याय निहपन्न राखवे की सामर्थ्य धरे। सो जो ज्ञान न होता, तो ऐसे वीर्य की सकल अनन्तशक्ति, अनन्त–पर्याय, अनन्त नृत्य, थट– कला रूप सत्ताभाव, रस–तेज, आनन्द, प्रभावादि अनन्त भेदभाव को न जानता। जब न जाने, तब देखना न होता। देखना न भये, अद्रसि[1] (अदृश्य) भया। जब अद्रश्य भया, तब अभाव होता। तातैं ऐसे वीर्य को ज्ञान ही प्रगट करे है अरु प्रदेश

१ निर्विकार साधु, २ ला कर, उपयोग लगा कर, ३ युगपत्, एक साथ

गुण असंख्यात प्रदेश धरे है। एक–एक प्रदेश में अनन्त–अनन्त गुण हैं। एक–एक गुण असंख्यात प्रदेशी, अनन्त पर्याय, अनंत शक्तिमंडित, सत्तासद्भाव, वस्तुत्व भाव, अगुरुलघुभाव, सूक्ष्मभाव,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
वीर्यभाव, द्रव्यत्वभाव, अवगाहभाव, प्रमेयत्वभाव, अमूर्तभाव, प्रभुत्वभाव, विभुत्वभाव, तत्त्वभाव, अतत्त्वभाव, भावभाव, अभावभाव, एकभाव, अनेकभाव, अस्तिभाव, सुद्धभाव, नित्यभाव, चैतन्यभाव, परमभाव, निजधरमभाव, ध्रुवभाव, आनंदभाव, अखंडभाव, अचलभाव, भेदभाव, अभेदभाव, केवलभाव, सासतभाव, अरूपभाव, अतुलभाव, अजभाव, अमलभाव, अविकारभाव, अछेदभाव, अमितभाव, प्रकाशभाव, अपारमहिमाभाव, अकलंकभाव, अकर्मभाव अघटभाव, अखेदभाव, निर्मलभाव, निराकारभाव, निहपन्नभाव, निःसंसारभाव, नास्ति– अन्यत्वभाव ते रहितभाव, कल्याणभाव स्वभाव, पररहितभाव चेतनागुण सो व्यापकभाव, ऐसे अनंत भाव एक–एक गुण धरे है। ऐसे अनंत–अनंत गुण एक–एक प्रदेश धरे सो ज्ञान ने वे प्रदेश जाने, तब प्रगटे बिना, ज्ञान विन प्रदेशन की सकल विशेषता को न जानता, तातैं प्रदेश महिमा जानवे को ज्ञान है। सत्तागुण सासत[२] लक्षण को धरे, द्रव्यसत्, गुणसत्, पर्यायसत्, अगुरुलघुसत्, सूक्ष्मसत्, अनन्त गुणसत्, महासत्, अवान्तरसत्, एकपर्यायसत्, अनेकपर्यायसत्, विश्वरूपसत्, एकरूपसत्, सर्वपदार्थस्थितिसत्, एक–एक पदार्थस्थितिसत्, त्रिलक्षणसत्, अत्रिलक्षणसत् ऐसे सत्ताभेद ज्ञान जाने है, तब प्रगटे है, तातैं प्रधान हैं। सूक्ष्म के भेद–द्रव्यसूक्ष्म, गुणसूक्ष्म, पर्यायसूक्ष्म, ज्ञानसूक्ष्म, दरसनसूक्ष्म, वीर्यसूक्ष्म, सुखसूक्ष्म, अगुरुलघुसूक्ष्म, द्रव्यत्वसूक्ष्म, वस्तुत्वरूपसूक्ष्म, ऐसे अनंतगुण–सूक्ष्मभेद ज्ञान प्रगट करे है, तातैं ज्ञान प्रधान है। ऐसे अनंतगुण

१ अदृश्य, न दिखाई पड़ना, २ शाश्वत, नित्य

के अनंत अपार महिमा मंडित भेद ज्ञान प्रगट करे है। तातैं ज्ञान में ऐसी ज्ञायकरिद्धि है, तातैं ज्ञान रिषि कहिये।

आगे ज्ञान को साधु कहिये है-

ज्ञान अपनी ज्ञायकपरणति करि आपको आप साधे। अनन्त ज्ञान में सब व्यक्त भये, तातैं सब प्रगट किये, तातैं सब के प्रगट भाव करणे का साधक है, तातैं साधु। ज्ञान करि सरूप सर्वस्व सधे। आतम ज्ञान ही तैं सर्वज्ञ महिमा को पावे है। ज्ञान सकल चेतना में विशेष चेतना है, तातैं सरूप साधन है। आतमा के परम प्रकाश ज्ञान ही का बड़ा है, प्रधान रूप है; तातैं सब प्रभुत्व साधक है। ज्ञान अनंत, अविनासी, आनंद का साधक है। सो ज्ञान की साधकता क्रमकरि न है, जुगपत साध्यसाधकभाव है। काहे तैं? एक बार सब का प्रकाशक है। यातैं जे ज्ञान भाव साधु भला समझेंगे, तो अविनासी नगरी का राजा होहिगे[1]। तातैं ज्ञान को साधु जानि सब जीव सुख पावो।

आगे ज्ञान को यति कहिये-

ज्ञान अज्ञानविकार के अभाव तैं सुद्ध है। इस संसार में सब जीव अनादि करमयोग तैं परको आप मानि मोहित होइ दुखी भये सो एक अज्ञान की महिमा, तातैं जन्मादि दुख तैं व्याकुल हैं। ता अज्ञान विकार को मेट्या, तब पूर्व कथित ज्ञान प्रभाव प्रगट्या, तातैं अज्ञानविकार जीत्या, तातैं ज्ञान यति भया। ऐसे ज्ञान यतिभाव को जाने, तो ऐसे ज्ञान यतिभाव को पावै, तातैं ज्ञान यतिभाव जानना जोग्य है।

---

१ होंगे

आगे ज्ञान को मुनि कहिये है-

ज्ञान प्रतक्ष का धारी मुनि है सो ज्ञान आप सरूप ही है। और को प्रतक्ष जाने है, तातैं मुनि है।

आगे दरसन को च्यारिभेद कहिये है-

मार्गदर्शक दरसन रिधि है। दरसन देखवे मात्र है। उपचार तैं लोकालोक को देखे है, अनंतगुण को देखे है, द्रव्यको देखे है, परजाय को, देखे है। जो दरसन न होता, तो द्रव्य अदृशि होता; तब ज्ञान कौन को जानता? ज्ञान न जानता, तब परिणमन न होता, तब दरसन–ज्ञान–चारित्र का अभाव भये वस्तु का अभाव होता। तातैं दरसन देखने रिद्धि तैं सब सिद्धि है। ज्ञान को न देखता, तो ज्ञान का सामान्य भाव को अदर्शिता आवती, तब सामान्य अदृशि भये विशेष भी न होता। सामान्यविशेष का अभाव भये वस्तु–अभाव होता, तातैं ज्ञान की सिद्धि दरसन की रिद्धि ते है। सत्ता को न देखता, तब सामान्यभाव अदर्शि भये विशेषता जाती, तब सत्ता न रहती। वीर्य को न देखता, तब वीर्य भी सत्ता की नाईं[1] अदर्शि भये नाश होता। ऐसे अनन्तगुण दरसन वे देखवे मात्र रिद्धि ते सिद्धि भये देखना निर्विकल्प–रस को प्रग करे है। जहां देखना तहां जानना, जानना तहां परिणमना। ताते दरसन के देखिवे तैं उपयोग[2] रिद्धि है। एक गुण के अभाव तैं सब अभाव होय, तातैं दरसन अपनी रिद्धि तैं सब की सिद्धि करे है। दरसन सर्वदरशी है। दरसन असाधारण गुण है। दरसन मुख्य चेतना है। दरसन प्रधान है, तातैं दरसन ऐसी रिद्धि के धारे ते रिषि कहिये है।

---

१ समान, २ देखना उपयोग का लक्षण है।

आगे दरसन साधु कहिये है-

दरसन दरसन परणति करि आप को आप साधे है। और के देखने करि विन को प्रगट करणा साधे आप सब को देखे। दरशन करि आतम देखे, तातैं सर्वदर्शीपणा को आतम में साधे। अपने देखन भाव करि जानना ज्ञान का होई। काहेते[1]? यह सामान्यविशेषरूप सब पदार्थ का निर्विकल्पसत्ता अवलोकन दरसन करे, सो ज्ञान में तो निर्विकल्प सत्ता अवलोकन नहीं, तातैं यह दरसन का भाव है। जो सामान्य न होय, तो विशेष ज्ञान न होय; सब अदृशि[2] भये ज्ञान किसका होय? तातैं दृशि[3] (श्य) दरसन तैं भये अदृशिपणा मिट्या। ज्ञान भी विशेष ज्ञाता भया। ज्ञान –दरसन का जुगपत भाव है। तातैं दरसन सारे गुण को प्रगट करि साधे, तातैं साधु है।

आगे दरसन को यति कहिए है-

दरसन अदरसन विकार दूरि किया है। जो विकार रहता, तो सर्वशक्ति दरसन में न होती। विकार जीते यति भया। दरसन विकार को सुद्धता में न आवने दे। सकल सुद्धता दरसन की, जामें अतीचार भी न लागे, ऐसी निराकार शक्ति प्रगटी, तातैं यति भया।

आगे दरसन को मुनि कहिये है-

दरसन में ज्ञान भी दरस्या[4] गया। तहां केवल दरसन में केवलज्ञान का अवलोकन भया, तब प्रतक्ष ज्ञानी को मुनिसंज्ञा है। दरसन अनंतगुण को प्रतक्ष देखे है। जो प्रतक्ष करे, ताको मुनि कहिये है, तातैं दरसन को मुनि संज्ञा कहिये। ऐसे सब गुण में च्यारि–च्यारि भेद जानने।

---

१ क्योंकि, २ अदृश्य, अगोचर, ३ दृश्य, गोचर, ४ देखा गया

आगे परमातमा राजा के उमराव[1] अनन्त हैं, ज्याह में[2] केतायेक[3] नाम लिखिये है-

प्रभुत्व नाम, विभुत्व नाम, तत्त्व नाम, अमलभाव नाम, चेतनप्रकाश नाम, निजधरम नाम असंकुचितविकास नाम, त्यागउपादानशून्यत्व नाम, परणामशक्तित्व नाम, अकर्तृत्व नाम, कर्तृत्व नाम, अभोक्ता नाम, भोक्ता नाम, भाव नाम, अभाव नाम, साधारणप्रकाश नाम, असाधारणप्रकाशकर्त्ता नाम, करम नाम, करण नाम, संप्रदान नाम, अपादान नाम, अधिकरण नाम, अगुरुलघु नाम, सूक्ष्म नाम, सत्ता नाम, वस्तुत्व नाम, द्रव्य नाम, प्रमेयत्व नाम, इत्यादि अनंत हैं। अपने-अपने औधे[4] का काम सब करे हैं। इनका विशेष आगे कहेंगे।

प्रदेश देसन में गुण जो पुरुष कहे अरु गुण परिणति नारी कही, ते विलास कैसे करे हैं? सो कहिये है-

वीर्यगुण नर के परिणति वीर्य की नारी सो दोउ मिलि भोग करे हैं सो कहिये है। वीर्य के अनंत अंग हैं-सत्तावीर्य, ज्ञानवीर्य, दरसनवीर्य, प्रमेयवीर्य, ऐसे अनंतगुणके अनंत वीर्यरूप अनंत अंग करि अपनी नारी जु परिणति ताके भोग को करे। ऐसे सब अंग में वीर्य परिणति परणई। वीर्य परिणति का अंग वीर्य नर सों व्याप्य-व्यापक भया, तब दोऊ अंग के मिलन ते अतेन्द्री भोग भया, तब आनंद पुत्र भया। तब सब गुण परिवार में वीर्य शक्ति फैलि रही थी, तातैं वह वीर्य की शक्ति तैं निहपन्न[5] थे। याके पुत्र भये, सब गुण वीर्यअंग था, वीर्यअंग परिफूलित[6] भये, तब सब गुण परिफूलित भये; तातैं सब गुण नर में मंगल भया। ऐसे ही ज्ञान नर मंत्री पद का धणी[1] था।

---

१ अधिकारी, शक्तिसम्पन्न, २ जिनमें से, ३ कितने ही, ४ पद, ५ निष्पन्न, निर्मित, ६ प्रफुल्लित

वह अपनी ज्ञान परिणति सों मिलि भोग करे है, ताका वरणन कीजिये है–

ज्ञान अनंतशक्ति स्वसंवेदरूप धरे, लोकालोक का जाननहार, अनंतगुण को जाने। सत् परजाय, सत् वीर्य, सत् प्रमेय, सत् अनंत गुण के अनंत सत् जाने। अनंत महिमा निधि ज्ञानरूप ज्ञान ज्ञानपरिणति नारी ज्ञान सों मिलि परिणति ज्ञान का अंग–अंग मिलन ते ज्ञान का रसास्वाद परिणति ज्ञान की ले ज्ञान परिणतिका विलास करे। जाननरूप उपयोग चेतना ज्ञान की परिणति प्रगट करे है। जो परिणति–नारी का विलास न होता, तो ज्ञान अपने जानन लक्षण को यथारथ न राखि सकता। जैसे अभव्य के ज्ञान है, ज्ञान परिणति नहीं, तातैं ज्ञान यथारथ न कहिये। ज्ञान ज्ञानपरिणति को धरे, तब यथारथ नांव[2] पावे[3]। तातैं ज्ञानपरिणति ज्ञान यथारथ प्रभुत्व राखे है। जैसे भली नारी अपने पुरुष के घर का जमाव करे है, तैसे ज्ञान स्व व सुख जुक्त घर ज्ञानपरिणति करे है। ज्ञानपरिणति ज्ञान के अंग को वेदि–वेदि विलसे है। ज्ञान के संगि सदा ज्ञान परिणति नारी है। अनंत शक्ति जुगपत सब ज्ञेय जानन की ज्ञान में तो है, परि[4] जब तांई[5] ज्ञान के परिणति नारी सों भेंट न भई, तब तांई अनंत शक्ति दबी रही। यह अनंत शक्ति परिणति–नारी ने खोली है। जैसे विशल्या ने लक्ष्मन की शक्ति खोली, तैसे ज्ञानपरिणति नारी ने ज्ञान की शक्ति खोली। ऐसे ज्ञान अपनी परिणतिनारी का विलास तैं अपने प्रभुत्व का स्वामी भया। परिणति ने जब ज्ञान वेद्या वेदता भोग अतेन्द्री भया, तब ज्ञानपरिणति का संभोग ज्ञानपुरुष किया, तब दोऊ के संभोग योग तैं आनंद नाम पुत्र भया, तब सब गुण–परिवार ज्ञान में

---

१ धनी, स्वामी, २ नाम, ३ प्राप्त करता है, ४ किन्तु, ५ जब तक

आये। सो ज्ञान के आनंद पुत्र भये हरष भया, सब के हरष मंगल भया[1]।

आगे दरसनगुण के दरसन–परिणति नारी है, सो अपनी नारी का विलास दरसन करे है सो कहिये हैं–

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दरसन–परिणति नारी दरसन अंग सौं मिले है, तब दरसन अपने अंग करि विलसे है। दरसन तैं नारी है, नारी तैं दरसन सरूप सधे है। दरसन परिणति नारी का सुहाग भी दरशन पति सों मिले है। जब तक दरशन सों दूरि थी, तब तक निर्विकल्प रस न पीवे थी, व्याकुल रूप थी। तातैं अनंत सर्वदर्शित्व शक्ति का नाथ अपना पति भेंटत ही अनाकुल दसा धरे है। ऐसी महिमा वठै[2] है। सारा वेद–पुराण जाको जस गावे है। दरसन वेदे, तब वा परणति सुद्ध परिणति ते दरसन सुद्ध; दरसने के अनुसार परिणति है। परिणति के अनुसार दरसन है। परिणति जब दरसन धरे, आप आप में, तब सुखी है। दरसन अपनी परिणति न धरे, तब आप अति असुद्ध भया, तब सुद्धता न रहे। परणिति को दरसन बिना विश्राम नहीं। दरसन को परिणति विना सुख नहीं, सुद्धता नहीं। परिणति दरसन के वेदिवे गुण का प्रकाश राखे है। न परणवे, तो देखना न रहे। दरसन न होय, तो परिणति किस के आश्रय होइ, किस को परणवे? यह परिणति दरसन पति सों मिलि संभोगसुख लेहै। दरसन–परिणति को अपने अंग सों मिलाय महासंभोगी हुवा वरते है। तहां दोऊ के संभोग करि आनन्द नाम पुत्र की उत्पत्ति होइ है। तब सब गुण परिवार महा आनंदी भये मंगल को करे हैं। तातैं इस नारी का पुरुष का विलास वरणन करवे को कौन समर्थ है?

---

१ हुआ, २ वहाँ, आत्मलोक में,

आगे द्रव्य नर अपनी परिणति तिया[1] का संभोग करे है सो कहिये है-

द्रव्य आप द्रवत ते नाम पाया है। द्रव्य जब द्रवे है, तब गुण–परजाय की सिद्धि है। द्रव्य अपने अन्वयी गुण को द्रवे व्यापे है, क्रमवर्ती परजाय को द्रवे है, तातैं द्रव्य है। द्रवे बिना परिणति न होती, परणये बिना गुण न होते, तब द्रव्य (का) अभाव होता, तातैं द्रवना द्रव्य को सिद्ध करे है। द्रवत गुण द्रवरूप परिणति तैं है। जो द्रवरूप न परणवता, तो द्रव न होता, तब द्रव्य न होता। तातैं परिणति द्रवत को कारण है। तातैं परिणतिनारी ते द्रवत[2] पुरुष की सिद्धि है। द्रवत अपनी परिणतिनारी का अंग विलसे है। परिणतिनारी द्रवत पुरुष को विलसे है।

द्रवत सब गुण में है, सो सब गुण के द्रवत के सब अंग एक बार में परिणतितिया विलसे है। जब सब गुण के द्रवत में विलसी, तब सब गुण के द्रवत आधार सब गुण थे। ऐसे द्रवत के विशेष विलास की करणहारी भई। परिणति मिले द्रवत की सिद्धि, तातैं परिणतिनारी का विलास द्रवत को अनंतगुण का आधार पद को थापे है।

प्रश्न-

द्रवत परिणति सब गुण में पैठी[3]। इहां द्रवत ही का विलास काहे को कहो? सब गुण कहो, सब गुण की परिणति कहो।

ताको समाधान-

सब गुण में तो द्रवत भया, द्रवत की परिणति द्रवत की साथि भई। तातैं द्रवत की परिणति द्रवत में कहिये; अनन्तगुण

---

१ पत्नी, नारी, २ ढलते हुए, द्रवते हुए, ३ प्रविष्ट, बैठी हुई,

की परिणति अनन्तगुण में कहिये। कोऊ गुण की परिणति कोऊ गुण में न कहिये। जिस गुणकी परिणति जिस गुण में कहिये, विस[1] गुण के द्वारा सब गुण में आए; और[2] गुण में कहिये तब और गुण की भई[3]। तातैं द्रवत के द्वारा द्रवत की है; तातैं परिणति का परम विलास परम है; अनंत अतिसय[4] को लिये है। द्रवत गुणपुरुष अपनी परिणति का विलास करे है सो महिमा अपार है; सारसुख उपजे है। इन दोऊ के संभोग ते आनन्द नामा पुत्र भयो है, तहां सब गुण परिवार के परम मंगल भयो है।

आगे अगुरुलघु अपनी परणतितिया का विलास करे है सो कहिये है-

मार्गदर्शक [illegible] सागर जी महाराज

अगुरुलघु का विकार षट्गुणी वृद्धि हानि है। षट्गुणी वृद्धि अपने अनन्तगुण में परणवन ते होय है। अनन्तगुण परणवन में अनन्तगुण का रस प्रगटे है। अनन्त भेद–भाव को लिये अनन्तरस, अनन्तप्रभुत्व, अनन्त अतिसय, अनन्तनृत्य, अनन्त थट–कलारूप सत्ताभाव प्रभाव, विलास ता विलास में नवरस वरते हैं। सो सब गुण, गुण का रस, नव षट्गुणी वृद्धि में सधे है सो कहिये है।

सत्तागुण में नवरस साधिये है-

प्रथम सत्ता में सिंगार[5] रस साधिये है। सत्ता सत्तालक्षण को धरे है। सत्ता को सिंगार अनन्तगुण है। सत्ता सासती[6] है। सत्ता मे ज्ञान सब ज्ञेय को ज्ञाता, अनन्तगुण ज्ञाता जानन प्रकाश सर्वज्ञशक्तिधारी, स्वसंवेदरसधारी अनन्त महिमा–निधि सब अनन्त द्रव्यगुणपर्याय जामें व्यक्त भये, ऐसो ज्ञान आभूषण सत्ता पहर्यो सत्तासिंगार भयो। निर्विकल्पदरसन निर्विकल्परसधारी,

१ उस, २ अन्य, दूसरे, ३ हुई, ४ चमत्कार, ५ श्रृंगार रस, ६ शाश्वत, नित्य

अविकारी भेदविकल्प को अभाव जामें, सकल पदार्थ को सकल सामान्यभावदरसी सत्तामात्र अवलोकी, ऐसो आभूषण सत्ता पहर्यो, तब यह सिंगार सत्ता को भयो। वीर्य सब निहपन्न[1] राखवे समर्थ सो सत्ता धर्यो, तब सत्ता की सोभा भई। प्रमेयगुण सब को प्रमाण करवे जोग्य, सब जातें प्रमाण भये सो सत्ता ने धर्यो, तब सत्ता प्रमाणरूप भई, तब सोभा भई; तब सत्ता को सिंगार है। अगुरुलघु सत्ता ने धर्यो, तब सत्ता हलकी भारी न भई। तब सत्ता अपने सुद्ध रूप रही, तब भली लागी; तब सत्ता की सोभा भई। ऐसे अनंतगुण सत्ता ने धरे आप मांही, तब सत्ता के आभूषण सब भये सो ही सिंगार जानो।

इहां कोई प्रश्न करे- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

गुण में गुण नहीं, सत्ता अनंतगुणधारी काहे कहो?

ताको समाधान-

सत्ता के लक्षण की अपेक्षा सब लक्षणरूप गुण हैं। 'है' लक्षण सत्ता को है, यातैं सत्ता में आये। द्रव्य तो सब गुण के सब लक्षण को आधार है। सत्ता एक है; लक्षण करि आधार ऐसो भेद विविक्षा ते प्रमाण है। ऐसे सत्ता सब रूप आभूषण बनाव करि सिंगार को धरि सोभावती है। सत्ता द्रव्य, गुण, पर्याय के विलास भाव विलसे है। सब विलासरस सत्ता में है, तातैं सिंगाररस सत्ता में भयो। सत्ता अरु सत्तापरणति दोऊ की रसवृत्ति, प्रवृत्ति सिंगार है। सत्ता परणति सत्ता को वेदे[2], तब रस निहपत्ति होई अरु सत्ता अपणी[3] परणति धरे, तब आप ही परणति रस को धरे, तब दोऊ के मिलाप ते आनंदरस होय सो सिंगार है।

---

१ निष्पन्न, शक्ति, २ अनुभव करे, ३ अपनी

आगे वीररस सत्ता में कहिए है-

सत्ता ते प्रतिकूल का अभाव सत्ता ने किया अपनी वीरवृत्ति करि ऐसी वीर्यशक्ति सत्ता में है, तिस ते सत्ता सासती[1] निहपत्ति[2] धरे है। है विलास द्रव्य--गुण–परजाय का, वीर्य ते सत्ता करे है; तातैं वीर्यरस में है। जेते गुण हैं अपने–अपने प्रभाव को धरे हैं, ते–ते सब गुण में सासताभाव, विकासभाव, आनंदभाव, वस्तुत्वभाव, प्रकाशभाव, अबाधितभाव ऐसे अनन्तभाव वीरत्व में आये; शक्ति ते वीर्य की, यातैं वीर्यरस में सब के राखणे का पराक्रम आया, तातैं वीररस सत्ता में भया। सत्ता तातैं सब को "है" भाव दिया। निहपत्ति वीर्य ने करी, तातैं वीररस सत्ता में कहिये।

आगे करुणरस सत्ता में कहिए है-

सत्ता में करुणा है। काहे[3] ते सत्ता 'है' भाव और गुण को न देता, तो सब विनसते, तातैं अपना है भाव सब को दे करि राखे, तब करुणा सधी, तातैं करुणरस सत्ता में आया।

आगे सत्ता में वीभत्सरस कहिए है-

सत्ता अपने 'है' भाव के प्रभाव का विलास बड़ा देख्या, तब और प्रतिकूल भाव सों ग्लानि भई, तब प्रतिकूल भाव न धर्‌या, तब वीभत्स कहिए।

आगे भयरस सत्ता में है सो कहिए है-

सत्ता ऐसे भय को धरे है, असत्ता में न आवे सो भय कहिए।

---

१ शाश्वत, २ निष्पत्ति, रचना, ३ किस से

सत्ता हास्यको धरे है सो कहिए है-

दरसन ज्ञानपरणति करि जो उल्हास[1] आनंद करे, दरसन-ज्ञान-चारित्र की सत्ता सो ही हास्य नाम जानना।

आगे रौद्ररस कहिए है-

सत्ता, असत्ता प्रतिकूलता को अपने वीर्य ते जीति सदा रहे है, तहाँ सदा परभाव का अभाव करणा। पर के अभाव रूप भाव सो ही रौद्ररस है।

आगे अद्‌भुतरस कहिए है-

अद्‌भुत सत्ता में ऐसी है-साकार ज्ञान है, निराकार दरसन है, दोऊ की सत्ता एक है। यह अद्‌भुत भावरस है।

आगे शांतरस कहिए है-

सत्ता में और विकल्प नहीं, स्व शांतरूप है; तातैं शान्तरस है।

ऐसे नऊ[2] रस एक सत्ता में सधे हैं। ऐसे ही अनन्त गुणन में नवों रस सधे हैं, सो जानियो। रसयुक्त काव्य प्रमाण है। जैसे भोजन लवणरस सों नीको[3] लगे, तैसे काव्य रस सहित भला लगे। तैसे अनन्तगुण अपने रसभरे सोभा पावे, तातैं रस वर्णन कियो।

आगे गुणपुरुष गुणपरणतिनारी का विलास कैसे करे है सो कहिए है-

ज्ञानगुण अपनी ज्ञानपरणति का विलास करे है। ज्ञान के अंग में परणति का अंग आया, तब अविनासी अखंडित महिमा

१ उल्लास, २ नौ, नवों, ३ स्वादिष्ट, भला

निज घर की प्रगटी। ज्ञान का जुगप्त[1] भाव परणति ने वेद्या, तब एकता रस उपज्या। परणति ज्ञान में न होती, तो अनन्तशक्तिरूप ज्ञान न परणवता, तब महिमा ज्ञान की न रहती। तातैं ज्ञान निज परणति धरि विलास ज्ञान करे है। ज्ञान में जानपणा था सो परणति परणई, तब जानपणा वेद्या, तब ज्ञानरस प्रगट्या ज्ञान में अतीन्द्रियभोग परणतितिया के संजोग ते है, तातैं ज्ञान अपणी नारी का विलास करे है। तहां आनंद पुत्र होय है। ऐसे अनंत गुणपुरुष सब अपणी गुणपरणति का विलास करे है। सब गुण का सरवस्व परणति सब गुण की है। वेद्यवेदकतारूप रस सब परणति ते सब में प्रगटे है।

प्रश्न-

एक गुण सब गुण के रूप होइ वरते है। तहां सब गुण की परणति ने सबका विलास कियाक न किया[2]?

ताका समाधान-

गुणरूप परणति जिस गुण की है तिस ही की है; और की नाहीं। विनमें[3] जो परजाय द्वार करि व्यापकता की है, तिस परजायरूप अपने अंग में परणवे है, तिस विलास को करे है; तातैं अपने अंग गुण के हैं, ते–ते विलसे हैं। गुण निज पुरुष जो है ताको विलसे है। जो यो न होय, तो और[4] गुण की परणति और गुण रूप होइ, तब महादूषण लागे; तातैं अपनी परिणति को गुण जो है सो ही विलसे है। यहां अनन्तसुख विलास एक–एक गुणपरणतितिया जोग ते[5] करे है। सब याही प्रकार विलास करे है। अनन्त महिमा को धरे है, ऐसे परमातम राजा के राज में सब गुणपुरुष नारी अनन्त विलास को करि सुखी हैं।

---

१ युगपत् २ किया या नही किया? ३ उनमें, ४ अन्य, दूसरे, ५ योग के द्वारा

दरसन मंत्री परमातम राजा को कैसे सेवै है सो कहिए है-

परमातमराजा की प्रजा अनन्तगुण शक्ति परजाय सकल राजधानी दरसन देखवे ते दरसि भई, तब साक्षात भई। दरसन न देखता, तब अदरसि[1] भये ज्ञान कहां ते जानता? देखने–जानने में न आवे, तब ज्ञेय वस्तु न होय; तब सब परमातम का पद न रहता। तातैं दरसन गुण देखि–देखि सकल सर्वस्व को साक्षात् करे है। ज्ञान को देखे है, तब ज्ञान अदरसि न होय है, तब ज्ञान का अभाव न भये, सद्‌भाव ज्ञान का रहे है। वीर्य को देखे है, तब वीर्य अद्रश्य न होय है, तब ज्ञान वीर्य को जाने है; तब साक्षात् होय है। ऐसे अनंतगुण परमातमा के राखवे को दरसन कारण है। दरसन निराकार रूप नित्य है सो निराकार शक्ति जनावे है। सामान्य सत् निर्विकल्पपने अवलोके है। तामें निरविकल्प सेवा दरसन की है। जो ऐसी निरविकल्प सेवा दरसन न करता, तो निरविकल्प सत् न रहता। साक्षात्कार निरविकल्पता दरसन ने दिखाई है। निरविकल्प ही वस्तु का सर्वस्व है। प्रथम सामान्य भाव होइ, तो विशेष होइ। सामान्य भाव बिना विशेष न होय। सामान्य विशेष को लिये है; तातैं दरसन निरविकल्प प्रगट करे है, तहां विशेष की भी सिद्धि होय है। काहे ते? सामान्य भये विशेष नांव पावे है, तातैं वस्तु की सिद्धि दरसन करे है। ऐसी सेवा करे है। दरसन सब गुणन में बहोत[2] बारीकी को धरे है। काहे ते विशेष में बहु पावे। दरसन सामान्य अवलोकन मात्र में सब सिद्धि तो है, परि[3] याको अंग अतिसूक्ष्मरूप, निरतिकल्प दसा रूप, निराकाररूप, अक्रियरूप, अमूरतिरूप, अखंडितरूप तामें गम्य जब होइ, तब सब सिद्धि

---

१ बिना देखे, २ अत्यन्त, बहुत, ३ परन्तु

होय। विरला जन दरसन में गम्य करे, संसार अवस्था में विशेष कहे सब जाने। सामान्य मात्रा में कोई विरला पावे, विशेष में बहु पावे। सो यह कथन संसार विविक्षा[1] को है। दरसन की सिद्धि सामान्य जनायवे को कह्यो है। जो कोई अपने प्रभु समीप जाय है सो प्रथम देखे है, तब सब क्रिया होय है। प्रभु को न देखे है, तो कछु न होय; तैसे परमातम राजा के देखे सब सिद्धि है। जैसे निरविकल्प रीति करि दरसन सेवे, ताको निरविकल्प आनंद फल होय है।

आगे ज्ञानमंत्री परमातम राजा को कैसे सेवे है?

परमातम राजा के जो विभव है, ताको विशेष जामें अनंतगुण की अनंतशक्ति, अनंतपर्याय, एक-एक गुण की परजाय में अनंतनृत्य, नृत्य में अनंत थट[2], थट में अनंतकला, कला में अनंतरूप, रूप में अनंतरूप, रूप में अनंतसत्ता, सत्ता में अनंतभाव, भाव में अनंतरस, रस में अनंतप्रभाव, प्रभाव में अनंत विभव, विभव में अनंतरिद्धि, रिद्धि में अनंत अतीन्द्रिय, अनाकुल, अनोपम[3], अखंडित, स्वाधीन, अविनासी आनंद, ये सब भाव ज्ञान जाने, तब व्यक्त होय, तब नांव पावे। ज्ञान न जाने, तब वेदवो न होय, तब हूवा ही न हूवा। तातैं ज्ञान अनन्त गुणपर्याय की समुदाय को प्रगट करे है। तब परमातमा को पद प्रगट करे है। तब परमातमा को पद प्रगट होय है। ज्ञान जाने परमातमा ने, तब सर्वस्व परमातमा को प्रगटे। ज्ञान त्रिकालवर्ती पदार्थ जाने या शक्ति ज्ञान में है। स्वसंवेदन ज्ञान, तातैं ज्ञान सकल विशेष भाव स्वपर का, लखावा वालो छै सो ज्ञान सकल ने प्रगट करे। सो परमातम राजा को प्रभुत्व ज्ञान प्रगट करे

---

१ विवक्षा, कथन की अपेक्षा, २ घाट, ३ अनुपम

छै। ज्ञान बिना परमातम राजा की विशेष विभूति कुन[1] प्रगट करे? ज्ञान ही प्रगट करे। ज्ञान मंत्री (को) ज्ञायकतारूप जानि परमातम राजा (ने) सर्व में प्रधानता दई। राजा को राज ज्ञान करि है। जैसे काहू के घर में निधान है, न जाने तो वह निधान भयो ही न भयो; तैसे परमातम राजा के अनन्त निधान[2] ज्ञान न जाने, तो सब वृथा होय। तातैं सब पद की सिद्धि ज्ञानमंत्री ते है। सत्ता में सासतालक्षण (ने) और गुण को सासता किया। उत्पाद, व्यय को धरे द्रव्य, गुण, पर्याय का आधार सो ज्ञान ने जनाया। परमातम राजा को वीर्य में निहपन्न राखवे का भाव है, सबको निहपन्न राखे सो ज्ञान ने जनाया। गुणन का भाव पर्यायभाव ज्ञान ने जनाया। तातैं ज्ञानमंत्री सब का जनावनहार है। सब को ज्ञान करि परमातम राजा जाने है, तातैं यह जाने है। मेरे ज्ञानमंत्री करि मैं सब जानो हों। यह ज्ञानमंत्री प्रधान सब परि प्रधान है। या ज्ञानमंत्री को अपना सर्वस्व सौंप्या है अरु विशेष अतीन्द्रिय आनंद की रिद्धि ज्ञान पावे है। ज्ञान तैं इस परमातम राजा के और बड़ा नाहीं। सर्वज्ञता याही[3] को संभवे है।

आगे चारित्रमंत्री कैसे सेवे है सो कहिये है-

परमातम राजा के जेता[4] कछु राजरिद्धि का भाव है, तेता[5] भाव को चारित्र आचरे है, थिरता राखे है। ज्ञान के जानपने को आस्वादी होय थिरता राखे, आचरे। ज्ञान स्वसंवेदभाव धरे, परम आनन्द उपजावे है सो चारि दरसन में सर्वदरशी शक्ति है। स्वरूप को देखे है, परमातम राजा के देखवे ते जो आनन्द पावे है, थिरताभाव पावे है सो चारित्र ते। वीर्य निहपन्नता की

---

१ कौन, २ खजाना, ३ इस, ४ जितना, ५ उतना

थिरता पावे है सो चारित्र ते, प्रमेय सत्ता आदि सब गुण थिरता पावे हैं सो चारित्र ते। वेदकभाव सब का चारित्र करे है। चारित्र सब द्रव्य, गुण, पर्याय शक्ति लक्षण सरूप रूप सर्वस्व वेदे है, थिरता राखे है। चारित्र मंत्री ते अपने घर की रिद्धि का जो सुख है सो परमातम राजा विलसे है। जो चारित्र न होता, तो अपनी राजधानी का सुख आप परमातम राजा न विलसता। काहे ते? यह रसास्वाद करणे[1] का अंग इस ही का है, और में नाहीं। राजा का पद सफल अनंतसुख ते है सो सुख इसते[2] है। तातैं यह राजपद की सफलता का कारण है। अर्थक्रिया षट्कारक यातैं है। उत्पाद, व्यय, ध्रुवता में स्वरूप लाभ स्वभाव प्रच्यवन[3] अवस्थित भाव करि[4] सिद्ध है है। सब गुण की अनंत महिमा याने सफल करी है। सब में प्रवेस करि वेदि विनके[5] स्वरूप भाव की प्रगटता करि वरते हैं, तब परमातम राजा जाने। यातैं सब की प्रगटता अरु रसास्वाद है। परमसुख याही करि भयो है। या बिना वेदकता नहीं। यह चारित्र मंत्री सब गुण को सफल करे है। याही करि मेरी गुण–प्रजा का विलास है सो जान्या जाय है। और तो जे लक्षण रीति धरे है सो तिन लक्षण को सफलता करि परमातम राजा की राजधानी राखे है, तातैं चारित्रमंत्री सब घर की निधि की सिद्धि करे है। बारे ही बारे[6] सिद्धि न करे, विनके घर में प्रवेश करि विनकी निधि महिमा का विलास व्यक्त करे है, ऐसा चारित्र प्रधान है। चारित्र काहू का आचरण न करे, तो सब गुण की भेंट परमातमराजा सो भई ही न भई, तब निज प्रजा का अभाव भये राजा किस का कहावे, तातैं राजपद का राखणसील (चारित्र) बड़ा मंत्री है।

---

१ करने, २ इससे, ३ च्युत, खिसकना, ४ के द्वारा, ५ उनके,
६ बाहर ही बाहर

आगे सम्यक्त फौजदार का वर्णन करिये है-

सम्यक्त फौजदार; सब गुणप्रजा सब असंख्यदेसन की है, तिस प्रजा को भलीभांति पाले है। तिस गुणप्रजा के प्रतिकूली है तिनका प्रवेश न होण[1] देहै[2]। काहू[3] की जोरी चोरी न चले है। ज्ञान का प्रतिकूल अज्ञान ता करि ससारी अंध भये डोले हैं; निजतत्त्व को न जाने है; स्वरूप तैं भिन्न पर को हेय न जाने है। परको स्व मानि–मानि मोह बैरी को प्रबलता करि अपणी[4] शक्ति मंद करि चौरासी लाख जोनि–देशन में अनादि के हींडे[5] है, थिरता का लेस भी न पावे है। ऐसी अज्ञान महिमा ताको यह सम्यक्त फौजदार अपने देशन में प्रवेस अंसमात्र हू न करने देहै[6]। अर दरसनावरणी स्वरूप का दरशन न होने देहै, विसते[7] प्राणी पर के देखवे में वरते[8] है, तहां आतम रति माने है। अनादि आवरण ऐसा है। चक्षु द्वारा परावलोकन[9] होय है सो हू न होने देहै, चक्षु दरशनावरणी ऐसा है। अचक्षुदरशनावरणी अचक्षुदरशन हू[10] न होने देहै। अवधिदरशनावरणी अवधिदरशन न होने देहै। केवलदरशनावरणी केवलदरसन न होने देहै। निद्रा[11] (पांच,) जागरत[12] का आवरण करे है सो स्वरूप दरशन कहां ते होने दे? तातैं दरशनावरणी स्वरूप दरशन का घातक है। ऐसे प्रतिकूलों को सम्यक्त फौजदार प्रवेश न होने दे। मोह, सम्यक्त का घातक अनंत सुख का घातक स्वरूपाचरण चारित्र का घातक। इस मोह (ने) जगत के जीव बहिरमुख[13] करि राखे हैं, पर का फंद[14] पारि[15] व्याकुल करि अनातम अभ्यास तैं दुखी किये हैं। साम्यभाव–अमृतरस न चाखने देहै। अतत्त्व में श्रद्धा, रुचि प्रतीति करि मानी है, पर–पद का अभिमानी राग ते उन्मत्त

---

१ होने, २ देता है, ३ किसी, ४ अपनी, ५ भ्रमण कर रहा है, ६ देता है, ७ उससे, ८ लगते हैं, ९ दूसरे का देखना, १० भी, ११ मुद्रित पाठ है– निद्रा पाँच, १२ जागृत, जागने का, १३बहिर्मुख, बाहरी प्रवृत्ति वाले, १४ फन्दा, १५ डाल-कर

पैंड–पैंड परि नया स्वच्छंद दसा धरि विषय–कषाय सों व्यापव्यापकता पर–परणति असुद्धता करि संसार वारा[1] तिस मोह ने कराया है। इन संसारी जीवन को मोह की महिमा शरीरादि अनित्य माने, मोह ते परम प्रेम करि सुख–दुख माने है। महामोह की कल्पना ऐसी है। अनंतज्ञान के धणी को भुलाय राख्या है। ऐसा प्रतिकूली बैरी को सम्यक्त फौजदार न आवने दे। परमातम राजा की आण ऐसी मनावे है। वेदनीय कर्म करि संसारी साता–असाता पावे है। तहां सुख–दुख वेदे है। हरख–सोक मानि–ग्लानि महा परवसि भये स्वरूप अनुभव न करि सके। परास्वाद में रस माने है। ऐसे प्रतिकूली को न आवने देहै। नामकर्म की करी[2] नाना विचित्रता है। कोई देवनाम, नरनाम, नारकनाम, तिरजंचनाम, जात्यादिनाम, सरीरादिनाम अनेक नाम हैं, ते धरें हैं। संसारी ते सूक्ष्मगुण को न पावे हैं। ऐसे प्रतिकूली का प्रवेश न होने देहै–सम्यक्त फौजदार। ऊंच–नीच गोत्रकर्म के उदय तैं ऊंच–नीच गोत्र संसारी धरे है। तातैं अगुरुलघु गुण को न पावे है। ऐसे कर्म का प्रवेश न होने देहै। आयुकर्म च्यारि प्रकार, अंतराय पांच प्रकार इनको न आवने देहै–सम्यक्त फौजदार। भावकर्म, नोकर्म का प्रवेश न होय, ऐसा तेज सम्यक्त का है। परमातमा राजा की राजधानी यथावत जैसी है तैसी राखे है। परमातमा राजा के जेते[3] गुण हैं तेते[4] सुद्ध या सम्यक्त ते हैं, तातैं याको ऐसा काम सौंप्या है।

–आगे परिणाम कोटवाल[5] का वर्णन कीजिये है–

परिणाम कोटवाल, मिथ्यात परिणाम–परपरिणाम चोर

---

१ वाला, २ की हुई, ३ जितने, ४ उतने, ५ कोतवाल,

का प्रवेश न होने देहै। परपरिणाम चोर कैसा है सो कहिये है–

स्वरूप रूप परिणाम के द्रोही हैं, पररूप को धुके[1] है, परपद का निवास पाय आतम निधि चोरवे को[2] प्रवीन[3] हैं। रागादि रूप अवस्था ते अनाकुल सुख का संबंध जिन के कबहू न भया है, पररस के रसिया हैं। भववासी जीव को अतिविषम हैं, तोऊ प्रिय लागे हैं। बंधन के करता हैं; पराधीन हैं, विनासीक हैं। अनादि–सादि पारणामिकता को लिये हैं, परंपरया अनादि हैं। ऐसे परपरणाम का प्रवेश परणाम–कोटवाल न होने देहै। विस[4] परणाम कोटवाल ने परमातम राजा के देस की प्रजा की संभार समय–समय करी है। विस के बड़ा जतन है। परमातम राजा ने एक स्वरूपरूप अनन्तगुणन की रखवाली का ओहदा[5] सौंप्या है। हमारे देस की सब सुद्धता तातैं है। तब ऐसा जानि गुणप्रजा की समय–समय और राजा की समय–समय संभार करे है। सब गुण के घर के प्रवेश करि विनके[6] निधान को साबूत करि[7] प्रतक्ष[8] विनका प्रभाव प्रगट करे है। या कोटवाल में ऐसी शक्ति है जो नेक वक्र होय, तो राजा का सब पद असुद्ध होय; शक्ति मंद होय संसारी की नांई[9]। तातैं परणाम कोटवाल सकल पद को सुद्ध राखे है। परणाम के आधीन राजपद है, तातैं परमरक्षाकारी कोटवाल है। परणाम कोटवाल में ऐसी शक्ति है सो सब राज को, राजा की गुण प्रजा को, मंत्री को, फौजदार को अपनी शक्ति मिलाय विद्यमान राखे है। सब अपणी महिमा को यातैं धरे हैं। या करि विनका[10] सर्वस्व है, ऐसा परणाम कोटवाल परमातम पद का कारण है, तातैं यामें[11] अपार शक्ति है।

---

१ झुकते हैं, २ चुराने के लिए, ३ चतुर, ४ उस, ५ पद, ६ उनके, ७ प्रमाणित कर, ८ तरह, समान, ९ उनका, १० इसमें, ११ अनुपम

आगे परमातम राजा का वर्णन कीजिये है-

परमातम राजा अपनी चिद्परणति तिया सो रमे है। कैसी है चेतनापरणति? महा अनन्त अनोपम[1], अनाकुल, अबाधित सुख को देहै। परमातम राजा सो मिलि-मिलि एक रस है है[2]। परमातम राजा अपना अंग सों मिलाय एकरूप करे है।

कोई इहां प्रश्न करे-

जो परणति समय-समय और-और[3] होय हैं, तातैं परमातम राजा के अनन्त परणति भई, तब अनन्तपरणतितिया कहो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ताको समाधान-

परमातम राजा एक है। परणतिशक्ति भाविकाल[4] में प्रगट और-और होने की है, परि[5] वर्तमानकाल में व्यक्तरूप परणति एक है सोही विस[6] राजा को रमावे है। जो परणति वर्तमान की राजा को भोगवे है सो परणति समय मात्र आतमीक अनन्त सुख देकरि विलय जाय है, परमातम में लीन होय है। जैसे देव के देवांगना एक विलय होइ, तब दूजी उपजे, तासो देव भोग करे। परि ए तो विशेष, बाकी रहणि[7] घणी,[8] याको एक समय मात्र। अरु वा[9] विलय होइ और[10] थानक[11] उपजे, या परि तिस रूप ही में समावे है। वर्तमान अपेक्षा एक है, अनन्त रस को करे है। सरूप को वेदि अंतर में मिलि स्वरूप निवास करि फेरि दूजे समय उपजे है। स्वरूप के शरीर में प्रवेश करि सुख दे मिलि गई, फेरि उपजि करि दूजे समय फेरि सुख देहै।

---

१ होती है २ होती है, ३ भिन्न-भिन्न, ४ भविष्यत्काल, ५ परन्तु, ६ उस, ७ रहना, ८ बहुत, ९ वह, १० अन्य, ११ स्थान पर

उपजतां स्वरूप सुख लाभ दे, व्यय करि स्वरूप में निवास करि ध्रुवताको पोषि[1] आनंद पुंज को करि स्वरस की प्रवृत्ति करणहारी कामिनी नवा स्वांग धरे है। परमातम राजा का अंग सकल पुष्ट करे है। और[2] तिया[3] बलको हरे है, या बल करे है और कबहू-कबहू रस-भंग करे है, या[4] सदा रसको करे है, या सदा आनंद को करे है। परमातम राजा को प्यारी, सुख देनी परम राणी अतीन्द्रिय विलासकरणी अपनी जानि आप राजा हू यासों दुराव[5] न करे। अपनो अंग दे समय-समय मिलाय ले है अपने अंग में। राजा तो वासों मिलता वाके[6] रंगि होय है। वा राजा सों मिलता राजा के रंगि होय है। एक रस-रूप अनूप भोग भोगवे है। परमातम राजा अरु परणतितिया का विलास सुख अपार, इन की महिमा अपार है। यह परमातम राजा का राज सदा सासत[7] अचल है। अनंत वर्णन किये हू[8] पार न आवै। विस्तार में आजि थोड़ी बुद्धि, तातैं न समझि परे। तातैं स्तोक[9] कथन किया है। जे गुणवान हैं ते या थोड़े ही बहुत करि समझेंगे। इस ही में सारा आया है, समझिवार[10] जानेंगे।

सवैया

परम[11] पुराण लखे पुरुष पुराण पावे सही
है स्वज्ञान जाकी महिमा अपार है।
ताकी किये धारण उघारणा[12] स्वरूप का ह्वै
ह्वै है निसतारणा[13] सो लहे भवपार है।।
राजा परमातमा को करत बखाण महा

---

१ पोषण कर , २ अन्य, दूसरी, ३ स्त्री, कामिनी, ४ यह, ५ छिपाव, कपट, ६ शाश्वत, ७ उसके, ८ करने पर भी, ६ अल्प, थोड़ा, १० समझदार, जानकार, ११ परमात्म, १२ प्रकटाना, प्रकाशित करना, १३ पार होना

'दीप'को सुजस बढ़े सदा अविकार है।
अमल अनूप चिदरूप चिदानंद भूप
तुरत ही जाने करे अरथ विचार है।।१।।

दोहा

परम पुरुष परमातमा, परम गुणन को थान।
ताकी रुचि नित कीजिये, पावे पद भगवान।।२।।

।।इति परमात्मपुराण ग्रंथ सम्पूर्ण।।

सवैया-टीका

सवैया

गुण एक एक जाके परजे[1] अनंत करे,
परजे में नंत[2] नृत्य नाना विसतर्‌यो है।
नृत्य में अनंत थट[3] थट में अनंत कला[4],
कला में अखंडित अनंत रूप धर्‌यो है।।
रूप में अनंत सत् सत्ता में अनंत भाव,
भाव को लखावहु अनंत रस भर्‌यो है।
रस के स्वभाव में प्रभाव है अनंत 'दीप',
सहज अनंत यो अनंत लगि कर्‌यो है।।१।।

टीका

गुण सूक्ष्म के अनंत पर्याय–ज्ञानसूक्ष्म, दर्शनसूक्ष्म, वीर्यसूक्ष्म, सुखसूक्ष्म, सर्वगुणसूक्ष्म, सो सूक्ष्म गुण तीका[5] पर्याय सूक्ष्म अनंत फैल्या। सो गुण गुण में आया। एक ज्ञानसूक्ष्म ता सूक्ष्म को पर्याय तीमें ज्ञान। सो ज्ञान अनंतो अनंत गुण आतमा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व, प्रभुत्व, विभुत्व, इत्यादि गुण। अनंतज्ञान जान्या दर्शन ने ज्ञान जाने वा वीर्य ने वा सुख ने वा वस्तुत्व ने वा प्रमेयत्व ने इत्यादि प्रकार अनंतगुण ने[6] ज्ञान जाने। ज्ञान अनंतज्ञानपणारूप नाच्यो[7] सो अनंत नृत्य भयो। यो निज द्रव्य को ज्ञान द्रव्य ने जाणे, सो द्रव्य अनंत गुणमय वैसो द्रव्य का जानपणा रूपज्ञान नाच्यो छै। सो अनंत नृत्य भयो, ती[8] नृत्य में द्रव्य को जानपणो छै[9]। सो द्रव्य अनंतगुण को थट लिया छै। सो गुण अनंत को थट

---

१ पर्याय, २ अनन्त, ३ घाट, ४ अपने–अपने लक्षण सहित, ५ उसका, ६ को, ७ नृत्य किया, परिणमित हुआ, ८ उस, ९ है

एक द्रव्य को जानपणा नृत्य में आयो। अनंत गुण किसा[1] है? एक-एक गुण में अनंत प्रकार थट छै सो कहिजे छै[2]। अनंत प्रकार भेद किसा छै? जीको[3] ब्योरो[4]–वीर्यगुण में ऐसो थट[5] छै जो द्रव्यवीर्य, गुणवीर्य, पर्यायवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य। क्षेत्रवीर्य क्षेत्र ने निहपन्न[6] राखे[7] सो द्रव्यवीर्य द्रव्य ने निहपन्न राखे, पर्यायवीर्य पर्याय ने निहपन्न राखे, भाववीर्य भाव ने निहपन्न राखे। द्रव्य का असंख्य प्रदेश क्षेत्र छै। त्या में[8] अनंतगुण को प्रकाश उठे छै। दर्शनप्रकाश, ज्ञानप्रकाश, वीर्यप्रकाश, सुखप्रकाश, प्रभुत्वप्रकाश, इत्यादि अनंतगुण को प्रकाश प्रदेशक्षेत्र तें उठे छै। ऐसो क्षेत्र तिहने[9] निहपन्न राखे, याही प्रकार द्रव्य का द्रव्यत्व गुण सों उपज्या भेद त्याहने[10] लिया द्रव्य तिन्हे निहपन्न राखे। द्रव्यवीर्य भवतीति भावपर्याय उपलक्षण भाववस्तु परिणमनरूप भाव अथवा स्वभावभाव तिन्हे निहपन्न राखे। भाववीर्य ऐसो थट[11] वीर्यगुण को छै। वीर्यगुण का थट में वस्तुत्व नाम गुण छै। एक छै वस्तु को भाव। वस्तुत्व सामान्यविशेषात्मक वस्तु तीको[12] भाव वस्तु को निहपन्न राखे। वस्तुत्व वीर्य वा वस्तुत्व वीर्य का थट में अनंत कला छै सो कहिजे छै।

कला वस्तु में जो कहावे जो अनेक स्वांग ल्यावे अथवा अनेक नट की नांई[13] कला करे परि[14] एकरूप रहे। त्यों वस्तुत्व सामान्यभाव विशेष त्यां रूप सो ज्ञान जानपणारूप परिणयो। सामान्य ज्ञान को भाव ज्ञान द्रव्य ने जाने, गुण ने जाने, पर्याय ने जाने। सो ज्ञान को विशेष भाव दर्शन देखिवारूप परिणयो, सो दर्शन को सामान्यभाव द्रव्य ने देखे, गुण ने देखे, पर्याय ने देखे सो दर्शन को विशेष भाव। ई प्रकार सकल गुण में

---

१ कैसा, २ कहते हैं, ३ उसका, ४ विवरण, ५ घाट, ६ निष्पन्न, ७ रखता है, ८ उसमें ९ उसने, १० उसके द्वारा, ११ घाट, १२ उसका, १३ समान, १४ परन्तु

सामान्य भाव विशेषभाव छै। सो ऐसा भाव-भेद वस्तुत्व करे छै, परि एक रूप रहे छै; ऐसी कला वस्तुत्व धर्‌या छै। वस्तुत्व गुण सकलगुण का सामान्यविशेषरूपपर्यायमंडित सो पर्याय वस्तु का अनंत भया। भाव प्रमेयत्व ने सामान्यविशेषपणो वस्तुत्व की पर्याय दियो, तब प्रमेयत्व सामान्यविशेषरूप भयो, तब सामान्य विशेषरूप होय स्वरूप रहे छै। जो वस्तुत्व की कला छी[1] सो प्रमेयत्व में आई, सो कला प्रमेय धरी सो कला अनंतरूप ने धर्‌या है सो कहिजे छै:-

सो प्रमेय गुण तीकी[2] अनेक प्रकारता[3] धरि एक रूप रहवो ऐसो प्रमेय दर्शन दृष्टि सम्यक् छै, तातैं प्रमाण करवा जोग्य छै। ज्ञान सम्यकज्ञानपणो धर्‌या छै सो ज्ञान प्रमाण करवा जोग्य छै। वीर्य सम्यक् वस्तु निहपन्न राखिवो जोग्य छै सो प्रमाण करवा जोग्य छै। जो प्रमेय गुण न होय तो अनंतगुण अपना रूप ने न धरता, न प्रमाणजोग्य होता। तातैं प्रमेय करि अनंत सूक्ष्म पर्याय सकल गुणां में आया, तब वे आपणे रूप धर्‌यो। तातैं एक वस्तुत्व की अनंतकला तिह में[4] एक प्रमेयत्व की कला, तिह प्रमेय कला अनंतगुण रूप धर्‌यो, ज्ञान प्रमाण करिवा करि ज्ञान रूप धर्‌यो, सत्तारूप धर्‌यो, वीर्यरूप धर्‌यो, प्रमेयत्व में सत्ता को रूप आयो सो रूप अनंतसत्ता में धर्‌या छै। काहे तें[5] धर्‌या छै? सत्ता तीन प्रकार छै। स्वरूपसत्ता भेद करि महासत्ता परम सामान्य संग्रहनय करि एक कही, परि अवांतरसत्ता तथा स्वरूपसत्ताभेद करि तीन प्रकार छै। द्रव्यसत्ता, गुणसत्ता, पर्यायसत्ता तीनां[6] में गुणसत्ता का अनंत भेद है। दर्शनसत्ता, ज्ञानसत्ता, सुखसत्ता, वीर्यसत्ता, प्रमेयत्वसत्ता, द्रव्यत्वसत्ता,

---

१ है, २ उसकी, ३ अनेकरूपता, ४ उसमें, ५ किससे, ६ तीनों में

इत्यादि अनंतगुण की अनंतसत्ता सो एक प्रमेयत्व में विराजे[1] छै। प्रमाण करवा जोग्य सत्ता भई, बिना प्रमेयत्व अप्रमाण होता, सत्ता ने कोई न मानतो, तब अकार्यकारी भया गणना[2] में न आवती। तातैं प्रमेयत्व में अनंतसत्ता कही–एक–एक गुण की सत्ता विराजे छै। ता एक–एक गुण सत्ता में अनंतभाव छै सो कहिजे छै–एक द्रव्य छै, तीको सार्थक नाम द्रव्यत्व करि पायो छै 'गुणपर्यायं द्रवति व्याप्नोति इति द्रव्यम्'। द्रव्यत्व गुण न हो तो द्रव्य न होतो[3]। काहे तैं[4]? बिना द्रया, गुण, पर्याय, स्वभाव को प्रकाश न होतो। तातैं द्रवे तब पर्याय–तरंग उठे, तब गुण अनंत अनंतशक्तिमंडित अनंतगुणपुंजस्वरूप द्रव्यनि को परिणमना गुण परिणाम आयो, तब स्वरूपलाभ अनंत गुण लाभ आयो, तब द्रव्यगुण की सिद्धि भई। ई प्रकार[5] द्रव्य द्रवे, पर्याय उठे, तब वो[6] पर्याय द्रव्य ने द्रवे, तब पर्याय गुण, द्रववा करि[7] गुण परिणति तैं गुणलाभ ले गुण में मिले, तब गुण सिद्धि ह्वै, तब गुण समुदाय द्रव्य सिद्धि है। गुण द्रवे, तब पर्याय रूप द्रया ह्वै, गुण–पर्याय द्रवे, तब पर्याय गुण द्रववा करि गुणपरिणति तैं गुण–लाभ ले, गुण में मिले, तब गुणसिद्धि ह्वै, तब गुणसमुदाय द्रव्य सिद्धि है। गुण द्रवे, तब पर्याय गुणपरिणति, तीसों[8] एक ह्वै, तब स्वयं स्वपर रूप है। तब गुण–लक्षण करि लक्ष्य नाम पावे। गुण द्रवे तब एक सत्त्व सकल गुण को होय तिन[9] द्रव्य की सिद्धि होई। ई प्रकार द्रव्यत्व सत्ता द्रय करि अनंत भाव ने धर्‌यो छै। ई प्रकार द्रव्यत्व सत्ता ज्यों अनंत भाव धर्‌या छै। जो–जो गुण रूप में सत्ता कही सो वाही[10] सत्ता ज्यों द्रव्यत्व करि भेद छै, त्यों भाव दिखायो,त्यों ही अगुरुलघुत्व सत्ता भाव अनंत ने धर्‌या

---

१ विद्यमान, २ गिनती में, गिनने में, ३ होता है, ४ किस कारण से, ५ इस प्रकार, ६ वह ७ ढल कर, ८ उस से, ९ उन, १० वही

छै। गुरुलघु भया इन्द्रीग्राह्य होय, भारी हूवा गिरि पड़े; हलका भया उडि जाय, तब अबाधित, अनाघात सत्ता घाती जाय; तातैं अगुरुलघु सत्ता को भाव अनंतधा[1] छै। ज्ञान अगुरुलघु, दर्शन अगुरुलघु, इत्यादि अनंतभाव अगुरुलघु धर्‌या छै[2]। एक प्रदेश अगुरुलघु प्रदेश भाव छै। ती प्रदेश अगुरुलघु प्रदेश भाव लखाव काजे तब अनंत रस होइ छै सो कहिये छै –वे प्रदेश अगुरुलघु भाव ने सम्यग्दृष्टि देखिजे, तब अनंत रस होई छै सो कहिये छै। प्रदेशस्यों अनंतगुण प्रकाश उठे छै। एक–एक गुणप्रकाश संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजनादि अनंत भेद रूप भाव अनेक दिखावे छै अरु[3] सत्ता रूप वस्तु एक छै। एक–एक प्रदेश में अनंत धरम गुण को छै। गुण अनंत शक्ति ने लिया छै। पर्याय नृत्य, थट, कला, रूप, सत्ता, भाव आदि द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव आदि भेद–प्रकाश सकल भेद को एक सत्त्व अभेद प्रकाश सकल प्रकाश मिलि एक चिदप्रकाश अभेदप्रकाश एक–एक प्रदेश इसो[4] प्रकाश ने लिया–ऐसा असंख्य प्रदेश को पुंज वस्तु। प्रकाश तिहका एक प्रदेश प्रकाश मांहू जो देखिजे, तो अनंत अनुभव रस स्वानुभूति रस देखता अपार शक्ति भेदाभेद प्रकाश में अनंत चिदप्रकाश रस लक्षण करता अनुभव रस होय छै सो अनंत छै, वचन अगोचर छै।

अब जी[5] रस को जो स्वभाव छै अरु जी स्वभाव अनंत प्रभाव छै सो कहिजे छैः–प्रदेश को अगुरुलघु तीको[6] जो लखाव करता रस सो प्रदेश अगुरुलघु भाव को भेदाभेद चिदप्रकाशनि को लखाव तीमें[7] जो रस की स्थिति अनुभूति तथा अनुभव रस

---

१ अनन्त प्रकार, २ धारण करता है, ३ और, ४ ऐसा, ५ जिस, ६ उसका, ७ उसमें

तीको स्वरूप नीको[1] गमनरूप भाव सो स्वभाव भेदाभेद चिदप्रकाश भाव को लखाव अतीन्द्रिय आनंद रस भर्‌यो छै, तीको यथावस्थित आनंदरस को सु[2] कहता भले प्रकार, भवन कहता भाव तीको वे रस को स्वभाव कहिजे[3]। अब वे रस का स्वभाव को प्रभाव कहिजे छै। वे आनंदरस को भले प्रकार होवो तीको प्रभाव ऐसो छै, वचन गोचर न छै। अंत सों रहित छै वो केवलज्ञान सों उपज्यो छै सो ज्ञान त्रिकालवर्ती त्रिलोक का पदार्थ अलोक सहित तिह[4] का द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, द्रव्य वा काल, भावादि समस्त भेद जाने छै; ऐसा ज्ञान सो अभेद सत्व छै, तातैं केवलज्ञान को प्रभाव अनंत छै। वे रस का स्वभाव को प्रभाव अनंतगुण को प्रभाव प्रभुत्व एकठो कीज्ये ऐसो छै। आत्मा को अनंतगुणरूप सहज छै सो अनंतगुण पर्यन्त साधनो। वे प्रभाव में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि सदा अविनाशी चिदविलास छै।।

इति

---

१ सम्यक्, भला, २ भला, अच्छा, ३ कहा जाता है, ४ उसका

स्वर्गीय कविवर दीपचंदजी कृत
ज्ञानदर्पण

दोहा

गुण अनंत ज्ञायक विमल, परमज्योति भगवान।
परमपुरुष परमातमा, शोभित केवलज्ञान।।१।।

सवैया (मनहर)

ज्ञान गुण मांहि ज्ञेय भासना भई है जाके,
ताके शुद्ध आतमा को सहज लखाव है।
अगम अपार जाकी महिमा महत महा,
अचल अखंड एकता को दरसाव है।।
दरसन[1] ज्ञान सुख बीरज अनंत धारे,
अविकारी देव चिदानंद ही को भाव है।
ऐसो परमातमा परमपदधारी जाको,
'दीप' उर देखे लखि निहचे[2] सुभाव है।।२।।
देखे ज्ञानदर्पण को मति परपण[3] होय,
अर्पण[4] सुभाव को सरूप में करतु है।
उठत तरंग अंग आतमीक पाइयतु,
अरथ विचार किए आप उघरतु[5] है।।
आतमकथन एक शिव ही को साधन है,
अलख अराधन के भाव को भरतु है।
चिदानंदराय के लखायवे को है उपाय,
याके सरधानी पद सासतो वरतु है[6] ।।३।।

---

१ अनन्त दर्शन, २ निश्चय, सहज, ३ प्राप्त, ४ लीनता, ५ प्रकट होता है, ६ वर्तता है।

परम पदारथ को देखे परमारथ है,
स्वारथ सरूप को अनूप साधि लीजिए।।
अविनाशी एक सुखरासी सोहे घट ही में,
ताके अनुभौ[1] सुभाव सुधारस पीजिये।।
देव भगवान ज्ञानकला को निधान जाको,
उर में अनाय[2] सदाकाल थिर कीजिए।।
ज्ञान ही में गम्य[3] जाको प्रभुत्व अनंत रूप,
वेदि[4] निज भावना में आनंद लहीजिए[5]।।४।।
दशा है हमारी एक चेतना विराजमान,
आन परभावन सों तिहुं[6] काल न्यारी है।
अपनो सरूप शुद्ध अनुभवे आठों जाम,
आनंद को धाम गुणग्राम[7] विसतारी है।।
परम प्रभाव परिपूरन अखंड ज्ञान,
सुख को निधान लखि आन[8] रीति डारी है।
ऐसी अवगाढ़ गाढ़ आई परतीति जाके,
कहे 'दीपचंद' ताको वंदना हमारी है।।५।।
परम अखंड ब्रहमंड[9] विधि लखे न्यारी,
करम विहंड[10] करे महा भवबाधिनी।
अमल अरूपी अज चेतन चमतकार,
समैसार[11] साधे अति अलख अराधिनी।।
गुण को निधान अमलान भगवान जाको,
प्रतच्छ[12] दिखावे जाकी महिमा अबाधिनी।
एक चिदरूप को अरूप अनुसरे ऐसी,
आतमीक रुचि है अनंतसुखसाधिनी।।६।।

---

१ अनुभव प्रत्यक्षगम्य, २ उपयोग लगा कर, ३ जानन में आने वाली, ४ अनुभव कर, ५ प्राप्त कीजिए, ६ तीनों (काल), ७ गुणों का समूह, ८ अन्य दूसरी, ९ विश्व, १० चकनाचूर, ११ त्रिकाली ध्रुव शुद्धात्मा, १२ प्रत्यक्ष

अचल अखंडपद रुचि की धरैया
भ्रम–भाव की हरैया एक ज्ञानगुनधारिनी।
सकति अनंत को विचार करे बार–बार,
परम अनूप निज रूप को उघारिनी[१]।।
सुख को समुद्र चिदानंद देखे घट मांहि,
मिटे भव–बाधा मोखपंथ की विहारिनी[२]।।
'दीप' जिनराज सो[३] सरूप अवलोके ऐसी,
संतन की मति महामोक्ष अनुसारिनी।।७।।
चेतनसरूप जो अनूप है अनादि ही को,
निहचे निहारि एकता ही को चहतु हैं।
स्वपरविवेक कला पाई नित पावन है,
आतमीक भावन में थिर है रहतु हैं।
अचल, अखंड अविनासी, सुखरासी महा,
उपादेय जानि चिदानंद को गहतु हैं।
कहे 'दीपचंद' ते ही आनंद अपार लहि,
भवसिंधुपार शिवद्वीप[४] को लहतु हैं।।८।।
चेतन को अंक[५] एक सदा निकलंक महा,
करम कलंक जामें[६] कोऊ नहीं पाइये।।
निराकार रूप जो अनूप उपयोग जाके,
ज्ञेय लखे ज्ञेयाकार न्यारो[७] हू बताइये।।
बीरज अनंत सदा सुख को समुद्र आप,
परम अनंत तामें और गुण गाइये।।
ऐसो भगवान ज्ञानवान लखे घट ही में,
ऐसो भाव भाय[८] 'दीप' अमर कहाइये।।९।।

---

१ प्रकट करने वाली, २ विलास करने वाली, ३ जिनदेव के समान (केवलज्ञान प्रकाशमय), ४ मोक्ष रूपी द्वीप, ५ आँक, स्वरूप, ६ जिसमें, ७ भिन्न, ८ भावना भा कर

व्यवहार नयके धरैया व्यवहार नय,
प्रथम अवस्था जामें करालंब[1] कह्यो है।
चिदानंद देखे व्यवहार झूठ भासतु है,
आतमीक अनुभौ सुभाव जिहिं लह्यो है।।
देव चिदरूपकी अनूप अवलोकनि में,
कोऊ विकलप भाव-भेद नहिं रह्यो है।।
चेतन सुभाव सुधारस पान होय जहां,
अजर अमरपद तहां लहलह्यो[2] है।।१०।।
ज्ञान उर होत ज्ञाता उपादेय आप माने,
जाने पर न्यारो जाके कला है विवेक की।।
करम कलंक पंक डंक[3] नहीं लागे कोऊ,
देव निकलंक रुचि भई निज एक की।
निरभै[4] अखंडित अबाधित[5] सरूप पायो,
ताही करि मेटी भ्रमभावना अनेक की।।
देव हिय बीच बसे सासतो निरंजन है,
सो ही धनि 'दीप' जाके रीति सुध टेक की।।११।।
मेरो ज्ञानज्योति को उद्योत मोहिं[6] भासतु है,
तातैं परज्ञेय को सुभाव त्याग दीनो है।।
एक निराकार निरलेप[7] जो अखंडित है,
ज्ञायक सुभाव ज्ञान मांहि गहि लीनो है।।
जाकी प्रभुता में उठि गए[8] हैं विभाव भाव,
आतम लखाव ही तैं आप पद चीनो[9] है।।
ऐसे ज्ञानवान के प्रमान ज्ञान भाव आपो,[10]
करनो न रह्यो कछु कारिज नवीनो है।।१२।।

---

१ हस्तावलम्बन, आश्रय, २ लहलहाता है, ३ डाँक, कर्मकलंक, ४ निर्भय, ५ मुदित पाठ है– आबधित, ६ मुझे, ७ लेप रहित, ८ समाप्त हो गए, विलीन हो गए, ९ पहचाना, १० आप, आत्मा का

मेरो है अनूप चिदरूप रूप मोहि मांहि,
जाके लखे मिटे चिर महा भवबाधना।।
जाके दरसाव में विभाव सो बिलाय जाय,
जाकी रुचि किए सधे अलख अराधना।।
जाकी परतीति रीति प्रीति करि पाई तातैं,
त्यागी जगजाल जेती सकल उपासना[1]।।
अगम अपार सुखदाई सब संतन को,
ऐसी 'दीप' साधे ज्ञानी सांची ज्ञानसाधना।।१३।।
आप अवलोके विना कछु नाहीं सिद्धि होत,
कोटिक[2] कलेशनि की करो बहु करणी[3]।
क्रिया पर किए परभावन की प्रापति है[4];
मोक्षपंथ सधे नाहीं बंध ही की धरणी।।
ज्ञान उपयोग में अखंड चिदानंद जाकी,
सांची ज्ञान भावना है मोक्ष अनुसरणी।।
अगम अपार गुणधारी को सुभाव साधे,
'दीप' संत जीवन की दशा भवतरणी।।१४।।
वेदत सरूप पद परम अनूप लहे,
गहे चिदभाव महा आप निज थान है।।
द्रव्य को प्रभाव अरु गुण को लखाव जामें,
परजाय को उपावे ऐसो गुणवान है।।
व्यय, उतपाद, ध्रुव सधे सब जाही करि,[5]
ताहि तें[6] उदोत[7] लक्ष्य लक्षनको ज्ञान है।
महिमा महत जाकी कहाँ लों कहत कवि,
स्वसंवेदभाव 'दीप' सुख को निधान है।।१५।।

---

१ मुद्रित पाठ है–उपाधना, २ करोड़ों, ३ क्रियाकाण्ड, ४ शरीराश्रित पुद्गल की क्रिया बुद्धि पूर्वक करने से राग–द्वेष की उत्पत्ति होती है, ५ जिसके द्वारा, ६ उससे, ७ ज्ञान प्रकाश

चिदानंदराइ सुखसिंधु है अनादि ही को,
निहचे निहारि ज्ञानदिष्टि धार लीजिये।
नय विवहार ही ते करम कलंक पंक,
जाके लागि आए तोऊ सुद्धता गहीजिये।
जैसे दिष्टि देखे सब ताके तैसी फल होइ,
मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
सुध[1] अवलोकं सुधउपयोगी हूजिये।
'दीप' कहे देखियतु आतमसुभाव ऐसो,
सिद्ध के समान ज्ञानभावना करीजिये।।१६।।
मेटत विरोध दोउ नयनको पच्छपात[2]
महा निकलंक स्यातपद अंकधारणी[3]।
ऐसी जिनवाणी[4] के रमैया समैसार[5] पावें,
ज्ञानज्योति लखें करें करमनिवारणी।
सिद्ध[6] है अनादि यह काहू पैं[7] न जाइ खंड्यो[8],
अलख अखंड रीति जाकी सुखकारणी।
लहिकें[9] सुभाव जाको रहि हैं सुथिर जेही,
तेही जीव 'दीप' लहें दशा भवतारणी।।१७।।
मानि परपद आपो भूले ए अनादि ही के,
ऐसे जगवासी निजरूप न संभारे हैं।
घट ही में सासतो[10] निरंजन जो देव बसे,
ताको नहीं देखे तातैं हित को निवारे हैं।
जोति निजरूप की न जागी कहुँ हिये माहिं,
यातैं सुखसागर सुभाव को विसारे हैं।
देशना जिनेंद्र 'दीप' पाय जब आपा[11] लखे,
होइ परमातमा अनंत सुख धारे हैं।।१८।।

---

१ त्रिकाली शुद्ध निजात्मा, २ मुद्रित पाठ है–पछितात (पक्षपात) एकान्त दृष्टि, ३ स्वरूप धरने वाली, ४ मुद्रित पाठ 'निजवाणी है, ५ अखण्ड ज्ञायक स्वभाव, ६ स्वतः सिद्ध, ७ किसी के द्वारा, ८ विनाश, ६ प्राप्त कर, १० शाश्वत, ११ आत्मानुभव कर

सहज आनंद पाइ रह्यो निज में लौ लाइ,
दौरि–दौरि[1] ज्ञेय में धुकाइ[2] क्यों परतु[3] है।
उपयोग चंचल के किये ही असुद्धता है,
चंचलता मेटे चिदानंद उघरतु है।
अलख अखंड जोति भगवान दीसतु है,
नै एकतैं[4] देखि ज्ञान–नैन उघरतु है।
सिद्ध परमातमा सो निजरूप आतमा है,
आप अवलोकि 'दीप' सुद्धता करतु है।।१६।।
अचल अखंड ज्ञानजोति है सरूप जाको,
चेतनानिधान जो अनंतगुणधारी है।
उपयोग आतमीक अतुल अबाधित है,
देखिये अनादि सिद्ध निहचै निहारी है।
आनंदसहित कृतकृत्यता उद्योत होइ,
जाही समै[5] ब्रह्मदिष्टि देत जो संहारी है।
महिमा अपार सुखसिंधु ऐसो घट[6] ही में,
देव भगवान लखि 'दीप' सुखकारी है।।२०।।
पर परिणाम त्यागि तत्त्व की संभार करे,
हरे भ्रम–भाव ज्ञान गुण के धरैया हैं।
लखे आपा आप मांहि रागदोष भाव नांहि,
सुद्ध उपयोग एक भाव के करैया हैं।
थिरता सुरूप ही की स्वसंवेद भावन में,
परम अतेंद्री सुख नीरके ढरैया हैं।
देव भगवान सो सरूप लखे घट ही में,
ऐसे ज्ञानवान भवसिंधु के तरैया हैं।।२१।।

---

१ दौड़–दौड़ कर, झपट्टा मार कर, २ झुककर, ३ गिर रहा है, ४ मुद्रित पाठ है–यकतैं, ५ जिस समय, ६ शरीर

लोकालोक लखिके सरूप में सुथिर रहें,
विमल अखंड ज्ञानजोति परकासी हैं।
निराकार रूप सुद्धभाव के धरैया महा,
सिद्ध भगवान एक सदा सुखरासी हैं।
ऐसो निज रूप अवलोकत हैं निहचे[1] में,
आप परतीति पाय जग सो उदासी हैं।
अनाकुल आतम अनूप रस वेदतु है,
अनुभवी जीव आप सुख के विलासी हैं।।२२।।
करम अनादि जोग जातैं निज जान्यो नांहि,
मानि पर मांहि आयो भव में बहतु है।
गुरु उपदेश समै पाय जो लखावे जीव,
आप पद जाने भ्रमभाव को दहतु है।
देवन को देव सो तो सेवत अनादि आयो,
निज देव सेवे[2] बिनु शिव न लहतु है।
आप पद पायवे को[3] श्रुत सो बखान्यो[4] जिन,
तातैं आत्मीक ज्ञान सब में महतु[5] है।।२३।।
गगनके बीचि जैसे घनघटा मांहि रचि,
आप छिप रह्यो तोऊ तेज नहिं गयो है।
करमसंजोग जैसे आवर्‍यो[6] है उपयोग,
गुपत सुभाव जाको सहज ही भयो है।
ज्ञेय को लखत ऐसो ज्ञानभाव यामें कोऊ,
परम प्रतीति धारि ज्ञानी लखि लयो है।
उपयोगधारी जामें उपयोग किए सिद्धि,
और परकार नहीं जिनवैन गायो है[7]।।२४।।

---

१ परमार्थ में, २ मुद्रित पाठ 'सेए' है, ३ पाने के लिए, ४ व्याख्यान किया, ५ महत्वपूर्ण, ६ आवृत, ढका हुआ, ७ मुद्रित पाठ है– चयो है।

महा दुखदानी भव थिति के निदानी[1] जातैं,
होय ज्ञान हानी ऐसे भाव चमैया[2] हैं।
अति ही विकारी पापपुंज अधिकारी सदा,
ऐसे राग–दोष भाव तिन के दमैया[3] हैं।
दया–दान–पूजा–सील संजमादि सुभभाव,
एहू पर जाने नाहिं इन में उम्हैया[4] हैं।
सुभासुभ रीति त्यागि जागे हैं सरूप माहिं,
तई ज्ञानवान चिदानंद के रमैया[5] हैं।।२५।।
देहपरिमाण गति गतिमांहि भयो जीव,
गुपत है रह्यो तोऊ धारे गुणवृंद है।
करम कलंक तोऊ जामें न करम कोऊ,
रागदोष धारे हू विसुद्ध निरफंद है।
धारत सरीर तोऊ[6] आतमा अमूरतीक,
सुध पक्ष गहे[7] एक सदा सुखकंद है।
निहचे विचार देख्यो सिद्ध सो सरूप 'दीप',
मेरे तो अनादि को सरूप चिदानंद है।।२६।।
व्यवहारपक्ष परजाय धरि आयो तोऊ,
सुद्धनै[8] विचारे निज पर में न फंसा है।
ज्ञान उपयोग जाकी सकति मिटाई नाहिं,
कहा भयो जो तू भववासी होय वसा है।
द्वैत को विचार किए भासत संयोग पर,
देखे पद एक पर ओर[9] नहिं धसा[10] है।
निहचे बिचारके सरूप में संभारि देखी,
मेरी तो अनादि ही की चिदानंद दसा है।।२७।।

---

१ जाँच करने वाले, २ शमन करने वाले, दबाने वाले, ३ दमन करने वाले, ४ उमंग रखने वाले, ५ रमण करने वाले, ६ तब भी, ७ शुद्धनय का पक्ष ग्रहण करने पर, ८ शुद्धनय (आत्मानुभव) से, ९ तरफ, १० झुका, प्रविष्ट

ज्ञान की सकति महा गुपति भई है तोऊ,
ज्ञेय की लखैया जाकी महिमा अपार है।
प्रतच्छ प्रतीति में परोक्ष कहो कैसे होई,
चिदानंद चेतना को चिन्ह अविकार है।
परम अखंड पद पूरन विराजमान,
तिहुंलोक नाथ किए निहचे विचार है।
अखैपद[1] यो ही एक सासता निधान मेरे,
ज्ञान उपयोग में सरूप की संभार है।।२८।।
बहु विसतार कहु[2] कहां लों बखानियतु,
यह भववास जहां भाव की असुद्धता।
त्यागि गृहवास है उदास महाव्रत धारें,
नहिं विपरीति जिनलिंग मांहि सुद्धता।
करम की चेतना में शुभ उपयोग सधे,
ताही में ममत[3] ताके तातैं नाहीं सुद्धता।
वीतराग देव जाको यो ही उपदेश महा,
यह मोखपद[4] जहां भाव की विशुद्धता।।२९।।
ज्ञान उपयोग जोग जाको न वियोग हूवो,
निहचे निहारे एक तिहुंलोक भूप है।
चेतन अनंत चिन्ह सासतो विराजमान,
गति-गति भम्यो[5] तोऊ[6] अमल अनूप है।
जैसे मणि मांहि कोऊ काचखंड माने तोऊ,
महिमा न जाय वामें[7] वाही[8] का सरूप है।
ऐसे ही_संभारिके सरूप को विचार्‌यो मैने,
अनादि दो अखंड मेरो चिदानंद रूप है।।३०।।

---

१ अक्षय, अखण्ड पद, २ कहो, ३ ममत्व, मेरे पन की बुद्धि, ४ मोक्ष, ५ भ्रमण किया, ६ तब भी, ७ उस में, ८ उसी का

दोहा

चिदानंद आनंदमय, सकति अनंत अपार।
अपनो पद ज्ञाता लखे, जामें नहिं अवतार।।३१।।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

छप्पय

सहज परम धन धरन, हरन सब करन भरममल।
अचल अमल पद रमन, मन पर करि निज लहि थल।।
अतुल अबाधित आप, एक अविनासी कहिये।
परम महासुखसिंधु, जास गुण पार न लहिये।।
जोती सरूप राजत विमल, देव निरंजन धरम धर।
निहचे सरूप आतम लखे, सो शिवमहिला[१] होय वर[२]।।३२।।

अथ बहिरात्मा कथन

मुनिलिंग धारि महाव्रत को सधैया भयो,
आप बिनु पाए बहु कीनी सुभकरणी।
यतिक्रिया साधिके समाधि को न जाने भेद,
मूढ़मति कहे मोक्षपद की वितरणी[३]।
करम की चेतना में सुभ उपयोग रीति,
यह विपरीति ताहि कहे भवतरणी।
ऐसे तो अनादि की अनंत रीति गहि आयो,
क्रिया नहिं पाई ज्ञानभूमि[४] अनुसरणी।।३३।।
सुभउपयोग सेती[५] जैसे पुण्यबंध होय,
पात्तर[६] को दान दिये भोगभूमि जाइये।
सतसंग सेती जैसे हित को सरूप सधे,
थिरता के आए जैसे ज्ञान को बढ़ाइये।

---

१ मुक्ति रूपी रमणी, २ वरण करने वाला, ३ देने वाली, ४ स्वसंवेदनगम्य आत्मानुभूति, ५ से, के द्वारा, ६ सुपात्र

गृहवासत्याग सों उदासभाव किये होय,
भेदज्ञान भाव में प्रतीति आप भाइये।
कारण तैं कारिज की सिद्धि है अनादि ही की,
आतमीक ज्ञान तैं अनंत सुख पाइये।।३४।।
जामें परवेदना उछेदना[1] भई है महा,
वेदे[2] निज आतमपद परम प्रकासती।
अनाकुल आत्मीक अतुल अतेंद्री सुख,
अमल अनूप करे सुख को विलासतो।
महिमा अपार जाकी कहां लों बखाने कोय,
जाही के प्रभाव देव चिदानंद भासतो।
निहचे निहारिके सरूप में सँभारि देख्यो,
स्वसंवेदज्ञान है हमारो रूप सासतो।।३५।।
परम अनंत गुण चेतना को पुंज महा,
वेदतु है जाके बल ऐसो गुणवान है।
सासतो अखंड एक द्रव्य उपादान सो तो,
ताही करि सधे यामें[3] और न विनान[4] है।
जाही के सुभाव तैं अनंतसुख पाइयतु,
जाही करि जान्यो जाय देव भगवान है।
महिमा अनंत जाकी ज्ञान ही में भासतु है,
स्वसंवेदज्ञान सो ही पदनिरवान है।।३६।।
रागदोष मोह के विभाग धारि आयो तोऊ,
निहचे निहारि नाहिं परपद गह्यो है।
एक ज्ञानजोति को उद्योत यो अखंड लिये,
कहा भयो जो तो जगजाल मांहि बह्यो[5] है।

---

१ विनाश, २ निज शुद्धात्मानुभव, ३ इसमें, ४ विज्ञान, ५ बह गया है, आकर्षित हो गया है

महा अविकारी सुद्धपद याको ऐसो जैसो,
जिनदेव निजज्ञान मांहि लहलह्यो है।
ज्ञायक प्रभा में द्वैतभाव[1] कोऊ भासे नाहिं,
स्वसंवेदरूप यो हमारो बनि रह्यो है।।३७।।
ज्ञान उपयोग ज्ञेय मांहि दे अनादि ही को,
करि अरुझार[2] आप एक भूलि बह्यो है।
अमल प्रकाशवत मूरति स्यों बँधि र ह्यो,
महा निरदोष तातैं पर हीं में कह्यो[3] है।
ऐसे है रह्यो है तोऊ अचल अखंडरूप,
चिदरूपपद मेरो देव जिन कह्यो है।
चेतना निधान में न आन[4] परवेस[5] कोऊ[6],
स्वसंवेदरूप यो हमारा बनि रह्यो है।।३८।।
जीव नटे नाट[7] थाट[8] गुण है अनंत भेष,
पातरि[9] सकति रसरीति विसतारा[10] की।
चेतना सरूप जाको दरसन देखतु है,
सत्ता मिरदंग ताल परमेय प्यारा की।
हाव–भाव आदिक कटाक्षन को खेयवो जो,
सुर को जमाव सब समकितधारा की।
आनंद की रीति महा आप करे आप ही को,
महिमा अखंड ऐसी आतम अपारा की।।३९।।
जैसे नर कोऊ भेष पशु के अनेक धरे,
पशु नहीं होइ रहे जथावत नर है।
तैसे जीव च्यारिगति स्वांग धरे चिर ही को,
तजे नाहिं एक निज चेतना को भर[11] है।

---

१ दो पना, भिन्न–भिन्न, २ उलझन उत्पन्न कर, ३ फंसा, ४ अन्य, दूसरे, ५ प्रवेश, ६ किसी का, ७ नृत्य, ८ घाट, ९ जघन्य, १० फैलाव, ११ भरपूर, भराव

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ऐसी परतीति किये पाइये परमपद,
होइ चिदानंद सिवरमणी को वर है।
सासतो सुथिर जहां सुख को विलास करे,
जामें प्रतिभासे जेते भाव चराचर है।।४०।।

दोहा

निज महिमा में रत भए, भेदज्ञान उर धारि।
ते अनुभौ लहि आपको, करमकलंक निवारि।।४१।।

मनहर

मूरति पदारथ जे भासत मयूर[1] जामें,
विकारता उपल[2] मयूर मकरंद की।
भावन की ओर देखे भावना मयूर होइ,
रहे जथावत दसा नहीं परफंद[3] की।
तैसे परफंद ही में पर ही सो भासतु है,
पर ही विकार रीति नही सुखकंद की।
एक अविकार शुद्ध चेतन की ओर देखें,
भासत अनूप दुति देवचिदानंद की।।४२।।

मत्तगयन्द सवैया

मेरो सरूप अनूप विराजत, मोहि में और न भासत आना।
ज्ञान कलानिधि चेतन मूरति, एक अखंड महा सुखथाना।
पूरण आप प्रताप लिए, जहँ जोग नहीं पर के सब नाना।
आप लखे अनुभाव[4] भयो अति, देव निरंजन को उर आना[5]।।४३।।

---

१ मोर, २ पत्थर पाषाण, ३ राग–द्वेष, मोहादि पर भावों का फन्दा,
४ आत्मानुभव, ५ विराजमान करना

ज्ञान कला जागी जब पर बुद्धि त्यागी तब,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
आतमिक भावन में भयो अनुरागी है।
पर परपंचन में रंच हूं न रति माने,
जाने पर न्यारो जाके सांची मति जागी है।
महा भवभार के विकार ते उठाइ दिए,
भेदज्ञान भावन सों भयो परत्यागी है।
उपादेय जानि रति मानी है सरूप मांहि,
चिदानंद देव में समाधि लय[1] लागी है।।४४।।
दरसन ज्ञान सुद्ध चारित को एक पद,
मेरो है सरूप चिन्ह चेतना अनंत है।
अचल अखंड ज्ञान जोति है उद्योत जामें,
परम विशुद्ध सब भाव में महंत है।
आनंद को धाम अभिराम जाको आठो जाम,
अनुभये[2] मोक्ष कहे देव भगवंत है।
सिवपद पाइवे को और भांति सिद्धि नाहिं,
यातैं अनुभयो निज मोक्षतियाकंत[3] है।।४५।।
अलख अरूपी अज आतम अमित तेज,
एक अविकार सार पद त्रिभुवन में।
चिर लों सुभाव जाको समै हू समार्‌यो नाहिं,
परपद आपो मानि भम्यो भववन में।
करम कलोलनि में डोल्यो[4] है निशंक महा,
पद–पद प्रति रागी भयो तन–तन में।
ऐसी चिरकालकी हू विपति[5] बिलाय जाय,
नेक हू निहारि देखो आप निजधन[6] में।।४६।।

---

१ लौ, लीनता, २ निज शुद्धात्मानुभव में स्थिर होने पर, ३ परमात्मा, मुक्ति नारी के पति, ४ आन्दोलित, ५ भव–भ्रमण, ६ ज्ञान चेतना में

निहचे निहारत ही आतमा अनादिसिद्ध,
आप निज भूलि ही तैं भयो व्यवहारी है।
ज्ञायक सकति जथाविधि सो तो गोप्य[१] दई,
प्रगट अज्ञानभाव दसा विसतारी है।
अपनो न रूप जाने और ही सों और माने,
ठाने[२] भवखेद निज रीति न सँभारी[३] है।
ऐसे तो अनादि कहो कहा साध्य सिद्धि अब,
नेक हूं निहारो निधि चेतना तुम्हारी है।।४७।।
एक वन मांहि जैसे रहतु पिशाची[४] दोइ,
एक न ताको तहां अति दुख द्यावे[५] है।
एक वृद्ध विकराल भाव धरि त्रास करे,
एक महा सुंदर सुभाव को लखावे है।
देखि विकराल ताको मन मांहि भय माने,
सुंदर को देखि ताको पीछे दौरि धावे[६] है।
ऐसो खेदखिन्न देखि काहू जन मंत्र दियो,
ताको उर आनि वो निसंक सुख पावे है।।४८।।
तैसे याही भव ज़ामें संपति विपति दोऊ,
महा सुखदुखरूप जन को करतु है।
गुरुदेव दियो ज्ञानमंत्र जब-जब ध्यावे,
तब न सतावे दोऊ दुखको हरतु है।
करिके विचार उर आनिए अनूप भाव,
चिदानंद दरसाव भावको धरतु है।
सुधा पान किए और स्वाद को न चाखे कोऊ,
किए सुध रीति सुध कारिज[७] सरतु[८] है।।४६।।

---

१ छिप गई, २ मानता है, ३ सम्हाली, ४ राक्षस, ५ दिलाता है, ६ दौड़ता है, ७ कार्य, ८ बनता है

देव जिनराज से अनादि के बताय आए,
तैसो उपदेश हम कहां लों बतावेंगे।
गहे पररूप ते सरूप की चितौनी[1] चुके[2]
अनुभौ सों केतेइ भव में न भमावेंगे।
एतो[3] हू कथन किए लागे जो न उर मांही[4]
तिन से कठोर नर और न कहावेंगे।
कहे 'दीपचंद' पद आदि देके कोऊ सुनो,
तत्त्व के गहैया भव्य भवपार पावेंगे।।५०।।
एक गुण सूच्छम[5] को एतो विसतार भयो,
सबै[6] गुण सूच्छम सुभाव जिहि कीने हैं।
एक सत सूच्छम के भेद हैं अनंत जामें,
अगुरुलघु ताहू को सूच्छमता दीने हैं।
अगुरुलघुताई सो सारे गुण मांहि आई,
अनंता-अनंत भेद सूच्छम यों लीने है।
सबै गुण मांहि ऐसे भेद सधि आवत है,
तेही जन पावें 'दीप' चेतना चीने हैं।।५१।।
जगवासी अंध यो तो बंध्यो है करम सेती,
फंद्यो परभाव सों अनादि को कलंक है।
नर देव तिरजंच नारकी भयो है जहां,
अहंबुद्धि ही में डोल्यो अति निसंक है
करम की रीति विपरीति ही सों प्रीति जातैं,
रागदोष धारि-धारि भयो बहु बंक है।
करम इलाज में न काज कोऊ सिद्ध भयो,
अब तू पिछान जीव चेतना को अंक है।।५३।।

---

१ चितवन, दृष्टि, २ चूकना, हटना, ३ इतना ही, ४ समझ में न आए, ५ सूक्ष्मत्वगुण, ६ सभी

स्वपर विवेक धारि आतमस्वरूप पावे,
चिदानंद मूरति में जेई लीन भए हैं।
पर सेती न्यारो पद अचल अखंडरूप,
परम अनूप आप गुण तेई लए हैं।
तिहुं लोक सार एक सदा अविकार महा,
ताको भयो लाभ तातैं दोष दूरि गए हैं।
अतुल अबाधित अनंत गुणधाम ऐसो,
अभिराम[१] अखैपद[२] पाय थिर थए[३] हैं।।५३।।
राग दोष मोह जाको मूल है असुभ–सुभ,
ऐसे जोग भाव में अनादि लगि रह्यो है।
भेदज्ञान भाव सेती जोग को निरोधि अति,
आतम लखाव ही में निज सुख लह्यो है।।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
परद्रव्य इच्छा परत्याग भयो जाही समै,
आप है अनंत गुणमई जाहीं[४] गह्यो है।
कारण सुकारिज को सिद्धि करि याही भांति,
सासतो सदैव रहे देव जिन कह्यो है।।५४।।
आप के लखैया परभाव के नखैया[५] रस,
अनुभौ चखैया चिदानंद को चहतु हैं।
परम अनूप चिदरूप को सरूप देखि,
पेखें[६] परमातमा को निज में महतु हैं।
ज्ञान उर धारि मिथ्यामोह को निवारि सब,
डारि दुख–दोष भवपार जे लहतु हैं।
लोक के सिखरि सुध सासतो सुथान लहि,
लोकालोक लखिके सरूप में रहतु हैं।।५५।।

---

१ सुन्दर, २ अक्षय पद, मुक्ति, ३ हुए हैं, स्थित हैं, ४ जिस को, ५ छोड़ने वाले, ६ अवलोकन करते हैं

परपद त्यागि आप पद मांहि रति माने,
जगी ज्ञानजोति भाव स्वसंवेद–वेदी है।
अनुभौ सरूप धारि परवाहरूप[1] जाके,
चाखत[2] अखंड रस भ्रम को उछेदी है।
त्रिकालसंबंधि जब द्रव्य–गुण–परजाय,
आप प्रतिभासे चिदानंदपद भेदी है।
महिमा अनंत जाकी देव भगवंत कहे,
सदा रहे काहू पै न जाय सो न खेदी है।।५६।।
जग में अनादि ही की गुपत भई है महा,
लुपत–सी[3] दीसे तोऊ रहे अविनासी है।
ऐसी ज्ञानधारा जब आप ही को आप जाने,
मिटे भ्रमभाव पद पावे सुखरासी है।।
अचल अनूप तिहुं लोक भूप दरसावे,
महिमा अनंत भगवंत देव वासी है।
कहे 'दीपचंद' सो ही जयवंत जगत में,
गुण को निधान निज ज्योति को प्रकासी है।।५७।।
मेरे निज स्वारथ को मैं ही उर जानत हौं,
कहिवे को नाहिं ज्ञानगम्य रस जाको है।
स्वसंवेदभाव में लखाव है सरूप ही को,
अनाकुल अतेंद्री अखंड सुख ताको है।
ताकी प्रभुता में प्रतिभासित अनंत तेज,
अगम अपार समैसार पद वाको है।
सुद्धदिष्टि दिए अवलोकन है आप ही को,
अविनासी देव देखि देखे पद काको[4] है।।५८।।

---

१ धारावाही ज्ञान, २ स्वाद लेते ही, ३ लुप्त हुई के समान, ४ किसका

आतम दरब जाको कारण सदैव महा,
ऐसो निज चेतन में भाव अविकारी है।
ताहि की धरणहारी **जीवन सकति** ऐसी,
तासों जीव जीवे तिहुंलोक गुणधारी है।
द्रव्य–गुण–पराजय एतो जीवदसा सब,
इन ही में वस्तु जीव जीवनता सारी है।
सब को अधार सार महिमा अपार जाको,
जीवन सकति 'दीप' जीव सुखकारी है।।५६।।
दरसन–गुण जामें **दरसि सकति**[1] महा,
ज्ञायक सकति ज्ञान मांही सुखदानी है।
अतुल प्रताप लिए **प्रभुत्व सकति** सोहे,
सकति अमूरति सो अरूपी बखानी है।
इत्यादि सकति जे हैं जीव की अनंत रूप,
तिन्हें दिढ़ राखिवे को अति अधिकानी है।
वीरज सकति[2] 'दीप' भाए निज भावन में,
पावन परम जातैं होई सिवथानी है।।६०।।
तिहुंकाल विमल अमूरति अखंडित है,
आकरती[3] जाकी परजाय कही व्यंजनी।
अचल अबाधित अनूप सदा सासती है,
परदेस[4] असंख्यात धरे है अभंजनी[5]।
विकलप भाव को लखाव कोउ दीसे नाहिं,
जाकी भवि जीवन के रुचि भव–भंजनी।
महा निरलेप[6] निराकार है सरूप जाको,
दरसि सकति ऐसी परम निरंजनी।।६१।।

---

१ दृशि शक्ति, २ वीर्य शक्ति, ३ आकृति, आकार, ४ प्रदेश, ५ अविनाशी,
६ निर्लेप, कर्म–मल से रहित

सकति अनंत जामें चेतना प्रधानरूप,
ताहू में[1] प्रधान महा **ज्ञायक सकति**[2] है।
परम अखंड ब्रहमंड की लखैया सो है,
सूक्षम सुभाव यों सहज ही की गति है।
सुपर[3] प्रकासनी सुभासनी[4] सरूप की है,
सुख की विलासनी अपार रूप अति है।
उपयोग साकार बन्यो है सरूप जाको,
ज्ञान की सकति 'दीप' जाने सांची मति है।।६२।।
सुसंवेद[5] भाव के लखाव करि लखी जाहे,
सब ही को पाहे[6] कहां लों कहीजिये।
अचल अनूप माया सास्वती अबाधित है,
अतिंद्री[7] अनाकुल में सुरस लहीजिये।
अविनासरूप है सरूप जाको सदा काल,
आनंद अखंड महा सुधापान कीजिये।
ऐसी **सुख सकति** अनंत भगवंत कही,
ताही में सुभाव लखि 'दीप' चिर जीजिये[8]।।६३।।
सत्ता के अधार ए विराजत हैं सबै गुण,
सत्ता मांहि चेतना है चेतना में सत्ता है।
दरसन ज्ञान दोऊ एऊ[9] भेद चेतना के,
चेतना सरूप में अरूप गुण पत्ता[10] है।
चेतना अनंत गुण रूप ते अनंतधा[11] है,
द्रव्य परजाय सोऊ[12] चेतन का नत्ता[13] है।
जड़ के अभाव में सुभाव सुध चेतना को,
यातैं **चिद सकति** में ज्ञानवान रत्ता[14] है।।६४।।

---

१ उसमें भी, २ ज्ञानशक्ति, ३ स्व–पर, ४ सुन्दर भासमान, ५ स्वसंवेद्य, ६ प्राप्ति, ७ अतीन्द्रिय, ८ अमर हो जाइये, ९ एक ही, १० प्राप्त, ११ अनन्त प्रकार, १२ वह भी, १३ नाता, सम्बन्ध, १४ अनुरक्त, लीन

सूच्छम सुभाव को प्रभाव सदा ऐसो जिहिं,
सबै गुण सूच्छम सुभाव करि लीने हैं।
वीरज सुभाव को प्रभाव भयो ऐसो तिहि,
अपने अनंत बल सब ही को दीने है।
परम प्रताप सब गुण में अनंत ऐसे,
जाने अनुभवी जे अखंड रस भीने[1] हैं।
अचल अनूप 'दीप' **सकति प्रभुत्व**[2] ऐसी,
उर में लखावे ते सुभाव सुध कीने है।।६५।।
अगुरुलघुत्व[3] को विभूति है महत महा,
सब गुण व्यापिके सुभाव एक रूप है।
ऐसे गुण गुणनि में विभूति बखानियतु,
जानियतु एक रूप अचल अनूप है।
निज–निज लक्षण की सकति है न्यारी–न्यारी,
जिहि विसतारी जामें भाव चिदरूप है।
कहे 'दीपचंद' **सुख** कहूं में **सकति** ऐसी,
विभूति लखे ते जीव जगत को भूप है।।६६।।
सकल पदारथ की अवलोकनि सामान्य,
करे है सहज सुधाधार की चरसनी[4]।
जामें भेद–भाव को लखाव कोउ दीसे नाहिं,
देखे चिदजोति शिवपद की परसनी[5]।
सकति अनंती जेती जाही में[6] दिखाई देत,
महिमा अनंत महा भासत सुरसनी[7]।
कहे 'दीपचंद' सुख कंद में प्रधान–रूप,
सकति बनी है ऐसी **सरव दरसनी**[8]।।६७।।

---

१ सराबोर, २ प्रभुत्वशक्ति, ३ अगुरुलघुत्व शक्ति, ४ निरन्तर ढलने वाली चरस के समान, ५ स्पर्श करने वाली, ६ जिस में, ७ उत्तम, स्वाद वाली, ८ सर्वदार्शित्वशक्ति

सकल पदारथ को सकल विशेष भाव,
तिन को लखाव करि ज्ञान जोति जगी है।
आतमीक लच्छन की सकति अनंत जेती,
जुगपद जानिवे को महा अति वगी[1] है।
सहज सुरस सुखवेद ही में आनंद की,
सुधाधार होइ सही जाके परमरस[2] पगी है।
परम प्रमाण जाको केवल अखंड ज्ञान,
महिमा अनंत 'दीप' **सकति सरवगी**[3] है।।६८।।
आतम अरूपी परदेस को प्रकास धरे,
भयो ज्ञेयाकार उपयोग समलीन है।
लक्षण है जाको ऐसो विमल सुभाव ताको,
वस्तु सुद्धताई सब वाही के[4] अधीन है।
जथारथ भाव को लखाव लिए सदाकाल,
द्रव्य–गुण–परजाय यह भेद तीन है।
कहे 'दीपचंद' ऐसी **स्वच्छ है सकति** महा,
सो ही जिय जाने जाके सुख की कमी न है।।६६।।
अनंत असंख्य संख्य भाग वृद्धि होय जहां,
संख्य सु असंख्य सु अनंतगुणी वृद्धि है।
एऊ षट् भेद वृद्धि निज परिणाम करे,
लीन होइ हानि सो ही करे व्यक्त सिद्धि है।
परणति आप की सरूप सों[5] न जाय कहूं,
चिदानंद देव जाके यहै[6] महा ऋद्धि है।
सकति अगुरुलघु[7] महिमा अपार जाकी,
कहै 'दीपचंद' लखे सब ही समृद्धि है।।७०।।

---

१ उछली है, २ मुद्रित पाठ है–फरस (?), ३ सर्वज्ञत्वशक्ति, ४ उसी के, ५ से, ६ यही, ७ अगुरुलघुत्वशक्ति

दरब सुभाव करि ध्रौव्य रहे सदाकाल,
व्यय उतपाद सो ही समै–समै करे है।
सासतो–खिणक[1] उपादान जाने पाइयतु,
सो ही वस्तु मूल वस्तु आप ही में धरे है।
द्रव्य गुण परजै[2] की जीवनी है याही यातैं,
चेतना सुरस को सुभाव रस भरे है।
कहे 'दीपचंद' यों जिनेंद को बखान्यो वैन,
परिणाम सकति[3] को भव्य अनुसरे है।।७१।।
काहू[4] परकार काहू काल काहू खेतर[5] में,
ह्वै है न विनाश अविनासी ही रहतु है।
परम प्रभाव जाको काहू पै[6] न मेट्यो जाय,
चेतना विलास के प्रकास को गहतु है।
आन परभाव[7] जामें आवत न कोउ जहां,
अतुल अखंड एक सुरस महतु है।
असंकुचित विकास सकति[8] बनी है ऐसी,
कहे 'दीप' ज्ञाता लखि सुख को लहतु है।।७२।।
गुण परजाय गहि बण्यो है सरूप जाको,
गुण परजाय बिनु[9] द्रव्य नाहिं पाइये।
द्रव्य को सरूप गहि गुण परजाय भये,
द्रव्य ही में गुण परजाय ये बताइये।
सहज सुभाव जातैं भिन्न न बतायो द्रव्य,
बिनु ही वस्तु कैसे ठहराइये?
तातैं स्यादवाद विधि जगमें अनादिसिद्ध,
वचन के द्वारि कहो कहां लगि[10] पाइये।।७३।।

---

१ नित्य–क्षणिक, २ पर्याय, ३ परिणामशक्ति, ४ किसी, ५ क्षेत्र, ६ किसी के द्वारा, ७ मुद्रित पाठ 'अवभाव' है, ८ असंकुचित–विकाशत्वशक्ति, ९ बिना, १० तक

गुण के सरूप ही ते द्रव्य परजाय है है,
केवलीउकतिधुनि[1] ऐसे करि गावे है।
द्रव्य गुण दोऊ परजाय ही में पाइयतु,
द्रव्य ही में गुण परजाय ये कहावे है।
यातैं एक–एक में अनेक सिद्धि होत महा,
स्यादवाद द्वारि गुरुदेव यो बतावे है।
कहे 'दीपचंद' पद आदि देके कोऊ सुनो,
आप पद लखें भवि[2] भवपार पावे है।।७४।।
एक गुण सेती दूजे गुण सों लगाय भेद,
सधत अनंतवार सात भंग नीके[3] हैं।
एक–एक गुण सेती अनंता अनंतवार,
साधत अनंत लगि लगें नाहिं फीके[4] हैं।
अनंता अनंतवार एक–एक गुण सेती,
साधिए सपतभंग[5] भेदिये सुही के[6] हैं।
यातैं चिदानंद में अनादिसिद्ध सुद्धि महा,
पूरण अनंत गुण 'दीप' लखे जीके[7] हैं।।७५।।
गुण एक–एक जाके परजै[8] अनंत कहे,
परजै में अनंतानंत नाना विसतर्‌यो है।
नाना में अनंत थट[9] थट में अनंत कला,
कला जु अखंडित अनंतरूप धर्‌यो है।
रूप में अनंत सत्ता सत्ता में अनंत भाव,
भाव को लखाव हू अनंत रस भर्‌यो है।
रस के सुभाव में प्रभाव है अनंत 'दीप' सहज
अनंत यो अनंत लगि कर्‌यो है।।७६।।

---

१ परमात्मा की दिव्यध्वनि, २ भव्य जीव, ३ भले, सम्यक, ४ स्वादहीन, नीरस, ५ सप्त भंग, ६ स्वंय ही के, ७ जीव के, ८ पर्याय, ६ घाट

दरवस्वरूप सो तो द्रव्य मांहि रहे सदा,
और को न गहे रहे जथारथताई है।
गुण को स्वरूप गुण मांहि सो विराज रहे,
परजाय दसा वाकी[1] वाही मांहि[2] गाई है।
जैसो गुण जाको, जाको जाही भांति करे और,
विषमता हरे वामें ऐसी प्रभुताई है।
तत्त्व है सकति जामें विभुत्व अखंड तामें,
कहे 'दीप' ऐसे जिनवाणी में दिखाई है।।७७।।
जाके देस–देसमें विराजित अनन्त गुण,
गुण मांहि देस असंख्यात गुण पाइये।
एक–एक गुणनि में लक्षण है न्यारो–न्यारो,
सबन की सत्ता एक भिन्नता न गाइये।
परजाय सत्ता मांहि व्यय–उतपाद–ध्रुव,
षट्गुणी हानि–वृद्धि ताही में बताइये।
निहचे स्वरूप स्व के द्रव्य–गुण–परजाय,
ध्यावो सदा तातैं जीव अमर कहाइये।।७८।।
गुण एक–एक में अनेक भेद ल्याय करि,
द्रव्य–गुण–परजाय तीनो साधि लीजिये।
नय, उपचार और नय की विवक्षा साधि,
ताही भांति द्रव्य मांहि तीनों भेद कीजिये।
परजाय परजाय मांहि मुख्य द्रव्य सो है,
याही रूप गुण तीनों यामें[3] साधि दीजिये।
याही भांति[4] एक कर अनेक भेद सबै साधि,
देखि चिदानंद 'दीप' सदा चिर जीजिये[5]।।७९।।

१ उस की, २ उसी में, ३ इस में, ४ इस प्रकार, ५ अमर हो जाइये

आप सुद्ध सत्ता की अवस्था जो स्वरूप करे,
सो ही करतार देव कहे भगवान है।
परिणाम जीव ही को करम करावे यातैं,
परिणति क्रिया जाको जाने सो ही जान[1] है।
करता करम क्रिया निहचे विचार देखे,
वस्तु सों न भिन्न होइ यहै परमान[2] है।
कहे 'दीपचन्द' ज्ञाता ज्ञान में विचारे सो ही,
अनुभौ अखंड लहि पावे सुखथान है।।८०।।
गुण को निधान अमलान है अखंडरूप,
तिहुँलोक भूप चिदानन्द सो दरसि है।
जामें एक सत्तारूप भेद त्रिधा फैलि रह्यो,
जाके अवलोके निज आनन्द वरसि है।
द्रव्य ही ते नित्य परजाय ते अनित्य महा,
ऐसे भेद धरिके अभेदता परसि है।
कहिये कहां लों जाकी महिमा अपार
'दीप' देव चिदरूप की सुभावता सरसि है।।८१।।
सहज आनन्दकन्द देव चिदानन्द जाको,
देखि उर मांहि गुणधारी जो अनन्त है।
जाके अवलोके यो अनादि को विभाव मिटे,
होय परमातमा जो देव भगवन्त है।
सिवगामी जन जाको तिहुंकाल साधि–साधि,
वाही को[3] स्वरूप चाहे जेते[4] जगि[5] सन्त हैं।
कहे 'दीप' देखि जो अखंड पद प्रभु को सो,
जातैं जग मांहि होय परम महन्त है।।८२।।

---

१ ज्ञान, २ प्रमाण, ३ उसी को, ४ जितने, ५ जगत में,

आतम करम दोऊ मिले[1] हैं अनादि ही के,
याही ते अज्ञानी है के महा दुख पायो है।
करिके विचार जब स्वपर विवेक ठान्यो[2],
सबै पर भिन्न मान्यो नाहिं अपनायो है।
तिहुंकाल शुद्धज्ञान–ज्योति की झलक लिये,
सासतो स्वरूप आप पद उर भायो है।
चेतना निधान में न आन कहूं आवन दे,
कहे 'दीपचंद' संतवंदित[3] कहायो है।।८३।।
आगम अनादि को अनादि यों बतावतु है,
तिहुंकाल तेरो पद तोहि उपादेय है।
याही तैं अखंड ब्रह्ममंड[4] को लखैया लखि,
चिदानंद धारे गुणवृंद सो ही धेय[5] है।
तू तो सुखसिंधु गुणधाम अभिराम महा,
तेरो पद ज्ञान और जानि सब ज्ञेय है।
एक अविकार सार सब में महंत सुद्ध,
ताहि अवलोकि त्यागि सदा पर हेय है।।८४।।
याही जग मांहि ज्ञेय भाव को लखैया ज्ञान,
ताको धरि ध्यान आन काहे पर हेरे है[6]।
पर के संयोग ते अनादि दुख पाए अब,
देखि तू सँभारि जो अखंड निधि तेरे है।
वाणी भगवान की जो सकल निचोर यहै[7],
समैसार आप[8] पुन्य पाप नहिं नेरे[9] है।
यातैं यह ग्रंथ सिव–पंथ को सधैया महा,
अरथ विचारि गुरुदेव यों परेरे[10] है।।८५।।

---

१ संयोगी, २ निश्चित किया, निर्णय किया, ३ साधु–सन्तों से वन्दना किए गए, ४ विश्व, ५ ध्येय, ६ पर का अवलोकन क्यों करता है? ७ मुद्रित पाठ 'को' है, ८ यही सार है, ९ आप; आत्मा, १० पास, ११ प्रेरणा करते हैं

व्रत तप सील संजमादि उपवास क्रिया,
द्रव्य भावरूप दोउ बंध को करतु हैं।
करम जनित तातैं करम को हेतु महा,
बंध ही को करें मोक्षपंथ को हरतु हैं।
आप जैसो होइ ताको आप के समान करे,
बंध ही को मूल यातैं बंध को भरतु हैं।
याको परंपरा अति मानि करतूति करे,
तेई महा मूढ़ भाव–सिंधु में परतु[१] हैं।।८६।।
कारण समान काज[२] सब ही बखानतु हैं,
यातैं परक्रिया मांहि परकी धरणि[३] है।
याही ते अनादि द्रव्य क्रिया तो अनेक करी,
कछु नाहिं सिद्धि भई ज्ञान की परणि[४] है।
करम को वंस जामें ज्ञान को न अंश कोउ,
बढ़े भववास मोक्ष–पंथ की हरणि[५] है।
यातैं परक्रिया उपादेय तो न कही जाय,
तातैं सदा काल एक बंध की ढरणि[६] है।।८७।।
पराधीन बाधायुत बंध की करैया महा,
सदा विनासीक जाको ऐसो ही सुभाव है।
बंध उदै रस फल जीमें[७] च्यार्‌यो[८] एक रूप,
सुभ वा असुभ क्रिया एक ही लखावे है।
करम की चेतना में कैसे मोक्षपंथ सधे,
माने तेई मूढ हिए जिन के विभाव है।
जैसे बीज होय ताको तैसो फल लागे जहां,
यह जग मांहि जिन–आगम कहाव है।।८८।।

---

१ पड़ते हैं, गिरते हैं, २ कार्य, ३ धरने वाली, ४ परिणति, ५ हरने वाली, ६ ढलने वाली, ७ जिसमें, ८ चारों ही

क्रिया सुभ कीजे पै न ममता धरीजे कहूं,
हूजे न विवादी यामें पूज्य भावना ही है।
कीजे पुन्यकाज सो समाज सारो पर ही को,
चेतना की चाहि नाहिं सधै याके याही है।
याको हेय जानि उपादेय में मगन हूजै,
मिटै है विरोध वाद[1] रहे न कहा ही है।
आठों जाम आतम की रुचि में अनंत सुख,
कहे 'दीपचंद' ज्ञान भाव हू तहां ही है।।८६।।

इति बहिरात्माकथन

अथ पंचपरमेष्ठी कथन

दोहा

सकल एक परमातमा, गुण ज्ञानादिक सार।
सुध परणति परजाय है, श्रीजिनवर अविकार।।९०।।

छियालीस गुण-कथन

सवैया

विमल सरीर जाको रुधिर वरण[2] खीर[3],
स्वेद[4] तन[5] नाहिं आदि संस्थानधारी[6] है।
संहनन आदि अति सुन्दर सरूप लिए,
परम सुगंध देह महा सुखकारी है।
धरे सुभ लक्षण को हित–मित वैन जाके,
बल है अनंत प्रभु दोष दुखहारी है।

---

१ वाद–विवाद, २ वर्ण, रंग, ३ क्षीर, दूध, ४ पसीना, ५ शरीर, ६ वज्रवृषभनाराच संहनन,

अतिसै[1] सहज दस जनम ते होइ ऐसे,
तिहुंलोकनाथ भवि जीव निसतारी है।।६१।।
गगन गमन जाके होय शत जोजन[2] में,
सुरभिक्ष च्यारों दिसि छाया नहिं पाइये।
नयन पलक नाहिं लगे न आहार ताके,
सकल परम विद्या प्रभु के बताइये।
प्राणी को न वध उपसर्ग नहिं पाइयतु,
फटिक[3] समान तन महा सुद्ध गाइये।
केस नख बढ़े नाहिं घातिया करम गए,
अतिसै जिनेंदजी के मन में अनाइये।।६२।।
सकल अरथ लिए मागधीय भाषा जाके,
तहां सब जीवन के मित्रता ही जानिये।
दरपण सम भूमि गंधोदकवृष्टि होय,
परम आनंद सब जीव को बखानिये।
सब रितु के फल–फूल है बनसपति,
यों न देव–भूमि में उपज लियो[4] मानिये।
चरणकमल तलि रचहिं कमल सुर,
मंगल दरब वसु हिये में प्रमानिये।।६३।
विमल गगन दिसि बाजत सुगंध वायु,
धान्य को समूह फले महा सुखदानी है।
चतुरनिकाय देव करत जयकार[5] जहां,
धर्मचक्र देखि सुख पावे भवि प्रानी है।
देवन किए यह अतिसै चतुरदस[6],
महिमा सुपुण्य केरी जग में बखानी है।
कहे 'दीपचंद' जाको इंद हू[7] से आय नमें,[8]

---

१ अतिशय, चमत्कार, २ योजन, कोस, ३ स्फटिक मणि, ४ मुद्रित पाठ है–जे उजूल(?) यौ, ५ मुद्रित पाठ 'हंकार?' है, ६ चौदहं अतिशय, ७ इन्द्र भी, ६ आ कर नमते हैं

ऐसो जिनराज प्रभु केवल सुज्ञानी है।।६४।।
करत हरण शोक ऐसो है अशोकतरु,
देवन की करी फूलवृष्टि सुखदाई है।
दिव्यध्वनि करि महा श्रवण को सुख होत,
सिंहासन सोहे सुर चमर ढराई है।
भामंडल सोहे सुखदानी सब जीवन को,
मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
दुंदुभि सुबाजे जहां अति अधिकाई है।
त्रिभुवनपति प्रभु यातैं हैं छतर तीन,
महिमा अपार ग्रंथ–ग्रंथन में गाई है।।६५।।
परम अखंड ज्ञान मांहि ज्ञेय भासत है,
ज्ञेयाकार रूप विवहार ने बतायो है।
निहचे निरालो ज्ञान ज्ञेय सों बखान्यो जिन,
दरसन निराकार ग्रंथनि में गायो है।
वीरज अनंत सुख सासतो सरूप लिए,
चतुष्टै अनंत वीतराग देव पायो है।
जिन को बखानत ही ऐसे गुण प्रापति है,
यातैं जिनराजदेव 'दीप' उर भायो है।।६६।।
सकल करम सों रहित जो, गुण अनंत परधान।
किंच ऊन परजाय है, वहै[1] सिद्ध भगवान।।६७।।
गुण छतीस भंडार जे, गुण छतीस हैं जास।
निज शरीर परजाय है, आचारज[2] परकास[3]।।६७।।
पूरवांग ज्ञाता महा, अंगपूरव गुण जानि।
जिह सरीर परजाय है, उपाध्याय सो मानि।।६६।।
आठबीस गुणको[4] धरे, आठबीस गुणलीन।
निज सरीर परजाय है, महासाधु परवीन[5]।।१००।।

---

१ वही, २ आचार्य, ३ प्रकाश, ४ अट्ठाईस मूलगुण को धारण करते है, ५ प्रवीण, चतुर

सवैया

गुणपरजाय जुत[1] द्रव्य जीव जाके गुण,
है अनंत परजाय पर परिणती है।
परमाणु द्रव्यरूप सपरस रस गंध,
गुण परजाय षट्वृद्धिहानिवती है।
गति थिति हेतु द्रव्य गतिथिति गुण परजाय
वृद्धि हानि धर्म अधर्म थितिगति[2] है।।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अवगाह वरतना हेतु दोउ दरव में,
ये ही गुण परजाय वृद्धि हानि गति है।।१०१।।
संज्वल कषाय थूल उदै मोह सूक्षम के,
थूल मोह क्षय तथा उपसम कह्यो है।
याही करि कारण तैं संजम को भाव होय,
छट्ठा गुणथान मांहि महा लहि ल ह्यो है।
ताको मिथ्यामती केउ मूढ जन मानतु है,
नय की विवक्षा भेद कछू नाहिं गह्यो है।
सहज प्रतच्छ शिव–पंथ में निषेध कीने,
यहां न विरोध कोउ रंच हू न रह्यो है।।१०२।।

अथ छट्ठो भेद सामायिक-कथन

सुभ वा असुभ नाम जाके[2] समभाव करे,
भली बुरी थापना में समता करीजिये।
चेतन अचेतन वा भलो बुरो द्रव्य देखि,
धारिके विवेक तहां समता धरीजिये।
शोभन–अशोभन जो ग्राम वन मांहि सम,
भले बुरे समै हूं में समभाव कीजिये।

---

१ युक्त, सहित, २ मुद्रित पाठ है–जागे,

भले बुरे भावनि में कीजे समभाव जहां,
सामायिक भेद षट्[1] यह लखि लीजिये।।१०३।।
करम कलंक लगि आयो है अनादि ही को,
यातैं नहिं पाई ज्ञानदृष्टि परकाशनी[2]।
मति गति मांहि परजाय ही को आपो मान्यो,
जानी न सरूपकी है महिमा सुभासनी[3]।
रंजक[4] सुभाव सेती[5] नाना बंध करे जहां,
परि परफंद[6] थिति कीनी भववासनी।
भेदज्ञान भये तें[7] सरूप में संभारि देखी,
मेरी निधि महा चिदानंद की विलासनी।।१०४।।
महा रमणीक ऐसो ज्ञान जोति मेरो रूप,
सुद्ध निज रूप की अवस्था जो धरतु है।
कहा भयो चिर सों मलीन हैके[8] आयो
तोऊ[9] निहचे निहारे परभाव न[10] करतु है।
मेघ घटा नभ मांहि नाना भांति दीसतु है,
घटा सों न होय नभ शुद्धता वरतु है।
कहे 'दीपचंद' तिहुँलोक प्रभुताई लिए,
मेरे पद देखे मेरो पद सुधरतु है।।१०५।।
काहे परभावन में दौरि-दौरि लागतु है,
दसा परभावन की दुखदाई कही है।
जन मांहि दुख परसंग ते अनेक सहे,
तातैं परसंग तोको त्याग जोगि सही है।
पानी के विलोए[11] कहु पाइये घिरत[12] नाहिं,
कांच न रतन होय ढूंढ़ो सब मही है।

१ सामायिक के छह भेद हैं, २ प्रकाशित करने वाली, ३ भलीभाँति प्रकाशित होने वाली, ४ राग करने वाले, ५ स्वभाव से, ६ मोह के फन्दे में पड़ कर, ७ मुद्रित पाठ है-भय मैं,८ हो कर, ६ तो भी, १० राग, द्वेषादि भाव, ११ बिलोने पर, १२ घी

यातैं अवलोकि देखि तेरे ही सरूपकी सु,
महिमा अनंतरूप महा बनि रही है।।१०६।।
भेदज्ञानधारा करि जीव पुदगल दोउ,
न्यारा–न्यारा लखि करि करम विहंडनी[1]।
चिदानंद भाव को लखाव दरसाव कियो,
जामें प्रतिभासे थिति सारी ब्रह्मंडनी[2]।
करम कलंक पंक परिहरि पाई महा,
सुद्धज्ञानभूमि सदा काल है अखंडनी।
तेई समकिती हैं सरूप के गवेषी जीव,
सिवपदरूपी कीनी दसा सुखपिंडनी।।१०७।।
आप अवलोकनि में आगम अपार महा,
चिदानंद सुख–सुधाधार की बरसनी।
अचल अखंड निज आनंद अबाधित है,
जाकी ज्ञान दशा शिवपद की परसनी[3]।
सकति अनंत को सुभाव दरसावे जहां,
अनुभौ की रीति एक सहज सुरसनी[4]।
धनि ज्ञानवान तेई परम सकति ऐसी,
देखी हैं अनंत लोकलोक की दरसनी[5]।।१०८।।
तत्त्व सरधान करि भेदज्ञान भासतु है,
जातैं परंपरा मोक्ष महा पाइयतु है।
तत्त्व की तरंग अभिराम[6] आठो जाम उठे,
उपादेय मांहि मन सदा लाइयतु[7] है।
चिंतन सरूप को अनूप करे रुचि सेती[8],
ग्रंथन में परतीति जाकी गाइयतु है।

---

१ विनाश करने वाली, २ ब्रह्माण्ड, विश्व की, ३ मुक्ति का स्पर्श करने वाली, ४ ज्ञानानन्द रस से युक्त, ५ देखने वाली, ६ सुन्दर, ७ लगाते हैं, ८ रुचि पूर्वक

परमारथ पंथ वा सम्यक व्योहार नाम,
जाको उर जानि–जानि जानि भाइयतु[1] हैं।।१०६।।
आगम अनेक भेद अवगाहे रुचि सेती,
लखिके रहसि[2] जामें महा मन दीजिये।
अरथ विचारि एक उपादेय आप जाने,
पर भिन्न मानि–मानि मानिके तजीजिये।
जामें सो तत्त्व होय जथावत जाने जाहि,
लखि परमारथ को ज्ञान–रस पीजिये,
गुनि परमारथ यों भेदभाव भाइयतु,
चिदानन्द देव को सरूप लखि लीजिये।।११०।।
सुद्ध उपयोगी देखि गुण में मगन होय,
जाको नाम सुनि हिए हरख[3] धरीजिये।
मेरो पद मोहि में लखायो जिहि संग सेती,
सो ही जाकी उरि भाय भावना करीजिये।
साधरमी जन जामें प्रापति सरूप की है,
ताको संग कीजे और परिहरि दीजिये।
यतिजन सेवा वह जान्यो भेद सम्यक को,
कहे 'दीप' याको लखि सदा सुख कीजिये।।१११।।
मिथ्यामती मूढ़ जे सरूप को न भेद जाने,
पर ही को माने जाकी मानि नहीं कीजिये।
महा सिवमारग को भेद कहुं पावे नाहिं,
मिथ्यामग लागे[4] ताको कैसे करि धीजिये[5]।
अनुभौ सरूप लहि[6] आप में मगन है है,
तिन ही के संग ज्ञान सुधारस पीजिये।

---

१ भावना भाते हैं, २ रहस्य, ३ हर्ष, उल्लास, ४ लगे हुए, ५ विश्वास दिलायें, ६ प्राप्त कर

मिथ्यामग त्यागि एक लागिये सरूप ही में,
आप पद जानि आप पद को लखीजिये।।११२।।
जाको चिदलच्छन पिछानि परतीति[1] करे,
ज्ञानमई आप लखि भयो है हितारथी[2]।
राग–दोष–मोह मेटि भेट्यो है अखंड पद,
अनुभौ अनूप लहि भयो निज स्वारथी।
तिहुँलोक नाथ यो विख्यात गायो वेदनि में,
तामें थिति कीनी कीनो समकित सारथी।
सरूप के स्वादी अहलादी चिदानंद ही के,
तेई सिवसाधक पुनीत परमारथी।।११३।।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सवैया

पैड़ी[3] चढ़े सुध[4] चाल चले, मुकताफल[5] अर्थ की ओर ढरें।
कंटकलीन[6] कमल लखे, तिहि दोष विचारिके त्यागि[7] धरें।
उज्जल वाणि[8] नहीं गुणहानि, सुहावनि[9] रीति को ना विसरें[10]।
अक्षर[11] मानसरोवर[12] मांहि,कितेक[13] विहंग[14] किलोल[15] करें।।११४।।

कवित्त

करतार करता है करता अकरता है,
करता अकरता की रीति सों रहतु है।
मूरतीक मूरति की उपेक्षा अमूरती है,
सदा चिनमूरति के भाव सों सहतु है।

---

१ प्रतीति, श्रद्धान, २ हित (आत्महित) चाहने वाला, ३ पग रूपी सीढ़ी, श्रेणि, ४ सरल, शुद्धोपयोग, ५ मोती, मुक्ति, ६ कीचड़ में लिप्त, शुभाशुभ कांटों से व्याप्त, ७ छोड़ना, व्रत–त्याग, ८ वाणी, स्वभाव, ६ सुहावना, सम्यक, १० भूलना, असावधान होना, ११ नित्य, अखण्ड, १२ मानसरोवर, झील, शुद्धोपयोग, १३ कितने ही, विरले, १४ पक्षी, शुद्धोपयोगी, १५ क्रीड़ा, विलास

एक में अनेक एक है अनेक मांहि एक,
एक में अनेक है अनेकता गहतु है।
लच्छिन की लच्छि लिए परतच्छ छिपाइयतु,
कहूं न छिपाइयतु जग में महतु है।।११५।।
है नाहीं है नाहिं वैनगोचर हू नाहीं यह,
है नाहीं है नाहीं मांहि तिहुं भेद कीजिये।
स्वपरचतुष्क भेद सेती जहां साधियतु,
सो ही नयभंगी जिनवाणी में कहीजिये।
स्यातपद सेती सात भंग को सरूप साधे,
परमाण[1] भंगी सों अभंग साधि लीजिये।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
दोऊ[2] सों रहत सो तो दुरनय[3] भंगी कही,
यहै तीन भेद सातभंगी के लखीजिये।।११६।।
स्वसंवेद ज्ञान अमलान[4] परिणाम आप,
आपन को दए आप आप ही सों लए हैं।
आप ही स्वरूप लाभ लह्यो परिणामनि में,
आप ही में आपरूप है के थिर थए[5] हैं।
सासती-खिणक[6] आप उपादान आप करे,
करता, करम, क्रिया आप परणए[7] हैं।
महिमा अनंत महा आप धरे आप ही की,
आप अविनासी सिद्धरूप आप भए हैं।।११७।।

१ प्रमाण, २ दोनों, ३ दुर्नय, मिथ्यानय, ४ शुद्ध, ५ लीन है, स्थित हैं, ६ नित्य-क्षणिक
७ परिणत हुए हैं

अथ बहिरात्मा-कथन लिख्यते

मणि के मुकुट महा सिर पै विराजतु हैं,
हिए मांहि हार नाना रतनके पोये[1] हैं।
अलंकार और अंग–अंग में अनूप बने,
सुन्दर सरूप दुति देखे काम गोये[2] हैं।
सुरतरु कुंजनि में सुरसंघ[3] साथ देखें,
आवत प्रतीति ऐसी पुन्य बीज बोये हैं।
करम के ठाठ ऐसे कीने हैं अनेक बार,
ज्ञान बिनु भाये[4] यों अनादि ही के सोये हैं।।११८।।
सुरपरजायनि में भोग भाव भए जहां,
सुख रंग राचो[5] रति कीनी परभाव में।
रंभा[6] हाव–भावनि को निरखि निहारि देखें,
प्रेम परतीति भई रमणिरमाव में।
देखि–देखि देवनि के पुंज आय पाँय परे[7],
हिय में हरष धरें लगिनि लगाव में।
पर परपंचनि में[8] संचिके करम भारी,
संसारी भयो फिरे जु पर के उपाव में।।११९।।

छप्पय

अजर अमर अविलिप्त, तप्त भव भय जहँ नाहीं।
देव अनंत अपार, ज्ञानधारक जग मांही।
जिहि[9] वाइक[10] जग सार, जानि जे भवदधि तरि हैं।
गुर निरगंथ महंत, संत सेवा सब करि हैं।

---

१ पिरोये हुए, २ डुबोये हुए, सराबोर, ३ देवताओं की टोली, ४ भावना भाए, ५ रचा हुआ, रंगा हुआ, तल्लीन, ६ देवी, ७ प्रणाम करते हैं, ८ पर–प्रपंच, विषय–भोग, ९ जिस प्रकार, १० वाचक, विद्वान्

देववाणि गुरु परखि परीक्षा कर यह, करि प्रतीति मन में धरे।
कहे 'दीपचंद' है नंदित[1], अविनासीसुख को वरे।।१२०।।

सवैया

धरे गुणवृंद सुखकंद है सरूप मेरो,
जामे परफंद[2] को प्रवेश नाहिं पाइये।
देव भगवान चिदानंद ज्ञानजोति लिए,
अचल अनंत जाकी महिमा बताइये।
परम प्रताप में न ताप भव भासतु है,
अचल अखंड एक उर में लखाइये।
अनुभौ अनूप रसपान ले अमर हूजे,
सासतो सुथिर जस जुग-जुग गाइये।।१२१।।
चेतनाविलास जामें आनन्दनिवास नित,
ज्ञान परकास धरे देव अविनासी है।
चिदानन्द एक तू ही सासतो निरंजन है,
महा भयभंजन है सदा सुखरासी है।
अचल अखंड शिवनाथन को रमैया तू है,
कहा भयो जो तो होय रह्यो भववासी है।
सिद्ध भगवान जैसो गुण को निधान तू है,
निहचे निहारि निधि आप परकासी है।।१२२।।
रमणि रमाव मांहि रति मानि राच्यो महा,
माया में मगन प्रीति करे परिवार सों।
विषैभोग सोंज[3] विषतुल्य सुधापान जाने,
हित न पिछाने बंध्यो अति भव-भार सों।।
एक इंद्री आदि ले असैनी परिजंत[4] जहां,
तहां ज्ञान कहां रुक्यो करम विकार सों।

१ मुद्रित पाठ है-बंद सो, २ राग-द्वेष, ३ संयोग, साझेदारी, ४ पर्यन्त

अबै देव गुरु जिनवाणी को संजोग जुर्‍यो[1],
सिवपंथ साधो[2] करि आतमविचार सों।।१२३।।
परपद आपो मानि जग में अनादि भम्यो,[3]
पायो न सरूप जो अनादि सुखथान है।
राग–दोष भावनि में भवथिति बांधी महा,
बिन भेदज्ञान भूल्यो गुण को निधान है।
अचल अखंड ज्ञानजोति को प्रकाश लिये,
घट ही में देव चिदानन्द भगवान है।
कहे 'दीपचन्द' आय इंद हू से[4] पाँय परे,
अनुभौ प्रसाद पद पावे निरवान है।।१२४।।

दोहा

चिदलच्छन पहचान ते, उपजे आनन्द आप।
अनुभौ सहज स्वरूप को, जामें पुन्य न पाप।।१२५।।

कवित्त

जग में अनादि यति जेते पद धारि आए,
तेऊ[5] सब तिरे लहि अनुभौ निधान को।
याके बिन पाए मुनि हू सो पद निंदित है,
यह सुख–सिंधु दरसावे भगवान को।
नारकी हू निकसि जे तीर्थंकरपद पावे,
अनुभौ प्रभाव पहुंचावे निरवान को।
अनुभौ अनंत गुण के धरे याही को,
तिहुंलोक पूजे हित जानि गुणवान को।।१२६।।

---

१ मिला है, २ साधना कर, ३ परिभ्रमण किया, ४ इन्द्र के समान भी, ५ वे भी,
६ धाराप्रवाह ज्ञान

अनुभौ अखंड रस धाराधर[1] जग्यो जहां,
तहां दुख दावानल रंच न रहतु है।
करमनिवास भववास घट भानवे को,
परम प्रचंड पौन मुनिजन कहतु है।
याको रस पिए फिरि काहू की इच्छा न होय,
यह सुखदानी जग में महतु[1] है।
आनंद को धाम अभिराम यह संतन को,
याही के धरैया पद सासतो लहतु है।।१२७।।
आतम–गवेषी संत याही के धरैया जे हैं,
आप में मगन करें आन न उपासना।
विकलप जहां कोऊ नहीं भासतु है,
याके रस भीने त्यागी सबै आन[2] वासना।
चिदानंद देव के अनंत गुण जेते कहे,
जिन की सकति सब ताहि मांहि भासना।
व्यय, उतपाद, ध्रुव, द्रव्य गुण–परजाय,
महिमा अनंत एक अनुभौ विलासना।।१२८।।

दोहा

गुण अनंतके रस सबै, अनुभौ रस के मांहि।
यातैं अनुभौ सारिखो, और दूसरो नाहिं।।१२९।।

सवैया

जगतकी जेती विद्या भासी कर–रेखावत,
कोटिक जुगांतर जो महा तप कीने हैं।

---

१ महत्त्वपूर्ण, महान्, २ अन्य, भौतिक

अनुभौ अखंड रस उर में न आयो जो तो,
सिवपद पावे नाहिं पररस भीने हैं।
आप अवलोकनि में आप सुख पाइयतु,
पर उरझार होय परपद चीने[1] हैं।
तातैं तिहुंलोकपूज्य अनुभौ है आतमा को,
अनुभवी अनुभौ अनूप रस लीने[2] हैं।।१३०।।

अडिल्ल

परम धरम के धाम जिनेश्वर जानिये।
शिवपद प्रापति हेतु आप उर आनिये।।
निहचे अरु व्योहार जिथारथ[3] पाइये।
स्याद्वाद करि सिद्धिपंथ शिव गाइये।।१३१।।

सवैया

लक्षन के लखे बिनु लक्ष्य नहिं पाइयतु,
लक्ष्य बिन लखे कैसे लक्षण लखातु है।
यातें लक्ष्य लक्षिन के जानिवे को जिनवानी,
कीजिये अभ्यास ज्ञान परकास पातु[4] है।
ऐसो उपदेस लखि कीनो है अनेक बार,
तोहू होनहार मांहि सिद्धि ठहरातु है।
निहचे प्रमाण किए उद्यम विलाय जाय,
दोउ नै विरोध कहु[5] किम[6] यो मिटातु[7] है।।१३२।।
मानि यह निहचे को साधक व्योहार कीजे,
साधकके बाधे[8] कहुं निहचो[9] न पाइये।
जद्यपि है होनहार तद्यपि है चिन्ह वाको,

---

१ पहचान लिए, २ लिए हुए, ३ यथार्थ, वास्तविक, ४ प्राप्त करता, ५ कहो, ६ किस प्रकार, ७ दूर होता है, मिटता है, ८ बाधक होने पर, ९ निश्चय, परमार्थ

साधि जाको साधन यो लक्षण लखाइये।
आए उर रुचि यह रोचक कहावे महा,
रुचि उर आए बिनु रोचक न गाइये।
अंतरंग उद्यम तैं आतमीक सिद्धि होत,
मंदिर के द्वारि[1] जैसे मंदिर में जाइये।।१३३।।
प्रकृति[2] गये ते वह आतमीक उद्यम है,
सो तो होनहार भए प्रकृति उठान[3] है।
नाना गुण–गुणी भेद सीख्यो न सरूप पायो
काल ले अनादि बहु कीनो जो सयान[4] है।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
यातैं होनहार सार सारे जग जानियतु,
होनहार मांहि तातैं उद्यम विणान[5] है।
चाहो सो ही करो सिद्धि निहचे के आए ह्वै है,
निहचे प्रमाण यातैं सत्यारथ ज्ञान है।।१३४।।
तीरथसरूप भव्य तारण है द्वादशांग,
वाणी मिथ्या होय तो तो काहे जिनभासी है।
जिनवानी जीवन को कीनो उपगार[5] यह,
याकी रुचि किए भव्य पावे सुखरासी है।
करत उच्छेद याको कैसे तत्त्व पाइयतु,
मोक्षपंथ मिटे जीव रहे भववासी है।
निहचे प्रमाण तोऊ[6] जाही–ताही[7] भांति,
अति अनुभौ दिढायो गहि दीजिए अध्यासी[8] है।।१३५।।
यह तो अनादि ही को चाहत अभ्यास कियो,
याके नहीं सारे पावे काल की लबधि तैं।
जतन के[9] साध्य सिद्धि होती तो अनादि ही के,
द्रव्यलिंग धारे महा अति ही सुविधि तैं।

१ दरवाजे में से, २ कर्म–प्रकृति, ३ अभाव, ४ चतुर, भेदविज्ञान–कुशल, ५ उपकार, ६ तब भी, ७ जिस–तिस, ८ राग में एकत्व बुद्धि, ९ पुरुषार्थ के

काज नहीं सर्‌यो[1] तातैं कछू न बसाय याको,
होनहार भए काज सीझे जथाविधि तैं।
यासे भवितव्य तो सो काहू पै न लंघी[2] जाय,
करि है उपाय जो तो नाना ये विधि तैं।।१३६।।
एक नै प्रमाण है तो[3] काहे को जिनेंद्रदेव,
कहे धनि[4] जीवन को उद्यम बतावनी।
तत्त्व को विचार सार वाणी ही तें पाइयतु,
वाणी के उथापे[5] याकी दसा है अभावनी[6]।
मोक्षपंथ साधि–साधि तिरे जिनवाणी ही ते,
यह जिनवाणी रुचे याकी भली भावनी[7]।
याही के उथापे भली भावनी उथापी जासे,[8]
यह भली भावनी सो उद्यम तैं पावनी।।१३७।।
उद्यम अनादि ही के किए हैं न ओर[9] आयो,
कहूं न मिटायो दुख जनम–मरण को।
यों तो केउ बेर[10] जाय जाय गुरुपास जाच्यो,
स्वामी मेरो दुख मेटो भव के भरण को।
दीनी उन दीक्षा इनि लीनो भले भाव करि,
समै विनु आए काज कैसे ह्वै तरण को।
यातैं कहे विविध बनायके उपाय ठाने,
बली काज जानि होनहार की ठरण[11] को।।१३७।।
जैसे काहू नगर में गए विनु काज न ह्वै,
पंथ बिनु कैसे जाय पहुंचे नगर में।
तैसे विवहार नय निहचे को साधतु है,

१ सफल हुआ, , २ पार करना, ३ यदि एक नय प्रमाण हो तो, ४ दिव्यध्वनि में, जिनेन्द्र भगवान् की वाणी में, ५ लोप करने, उत्थापन करने से, ६ अभाव की, शून्य की, ७ होनहार, ८ इसका लोप, उत्थापन करने से भवितव्यता का भी उससे अभाव हो जाएगा, ६ अन्त, १० कई बार, ११ स्थिति

'दीपक' उद्योत वस्तु ढूँढ़ लीजे घर में।
साधक उच्छेद सिद्धि कोउ न बतावतु हैं,
नीके मूं निहारि[1] काहे परे जूठी हर में[2]।
अनादि निधान श्रुतकेवली कहत सो ही,
कीजिए प्रमाण मोखवधू होय कर में।।१३९।।
मोक्षवधू ऐसे जो तो याके कर मांहि होय,
ताहि[3] केवली के वैन सुने हैं अनादि के।
जतन अगोचर अपूरव अनादि को है,
उद्यम जे किए जे जे भए सब वादि के[4]।
तातैं कहा सांच को उथापतु[5] है जानतु ही,
भोरो[6] होय बैठो वैन मेटि मरजादि के[7]।
जो तो जिनवाणी सरधानी है तो मानि-मानि,
वीतरागवैन[8] सुखदेन यह दादि के[9]।।१४०।।
उद्यमके डारे[10] कहूं साध्य-सिद्धि कही नाहिं,
होनहार सार जाको उद्यम ही द्वार है।
उद्यम उदार दुखदोष को हरनहार,
उद्यम में सिद्धि वह उद्यम ही सार है।
उद्यम विना न कहूं भावी भली होनहार,
उद्यम को साधि भव्य गए भवपार है।
उद्यम के उद्यमी कहाए भवि जीव तातैं,
उद्यम ही कीजे कियो चाहे जो उद्धार है।।१४१।।
आडंबर भार तैं उद्धार कहूं भयो नाहीं,
कही जिनवाणी मांहि आप रुचि तारणी।
चक्री भरतेश जाके कारण अनेक पाप,

१ मैं भलीभाँति आत्मावलोकन कर, २ फिर झूठा नहीं बनना पड़ता है, सत्य की उपलब्धि हो जाती है। ३ मुद्रित पाठ है-तौ तो, ४ कथन मात्र, ५ उखाड़ना, लोपना, ६ भोला, अज्ञानी, ७ मर्यादा वाला, ८ वीतरागवाणी, ९ साध कर, १० छोड़ कर,

भए पै तथापि तिर्यो दसा आप धारणी।
आन को उथापि[१] एक जिनमत थाप्यो यों,
समंतभद्र तीर्थंकर होसी या विचारणी।
कारण तैं कारिज की सिद्धि परिणाम ही तैं,
भाषी भगवान है अनंत सुखकारणी।।१४२।।
करि किया कोरी कहूं जोरी सों[२] मुकति,
सहज सरूप गति ज्ञानी ही लहतु हैं।
लहिके एकांत अनेकांत को न पायो भेद,
तत्त्वज्ञान पाये विनु कैसेक महंतु हैं।
सकल उपाधि में समाधि जो सरूप जाने,
जगकी जुगति[३] मांहि मुनिजन कहतु हैं।
ज्ञानमई भूमि चढि[४] होइके अकंप[५] रहे,
साधक ह्वै सिद्ध तेई थिर ह्वै रहतु हैं[६]।।१४३।।
अविनाशी तिहुंकाल महिमा अपार जाकी,
अनादि–निधान–ज्ञान उदै को करतु है।
ऐसे निज आतमा को अनुभौ सदैव कीजे,
करम कलंक एक छिन में हरतु है।
एक अभिराम जो अनंत गुणधाम महा,
सुद्ध चिदजोति के सुभाव को भरतु है।
अनुभौ प्रसाद तैं अखंड पद देखियतु,
अनुभौ प्रसाद मोक्षवधू को वरतु[७] है।।।१४४।।
तिहुंकाल मांहि जे–जे शिवपंथ साधतु हैं,
रहत उपाधि आप ज्ञान जोतिधारी हैं।
देखें चिनमूरति को आनंद अपार होत,

---

१ अन्य मत का खण्डन कर, २ हठ पूर्वक, बलजोरी से, ३ युक्ति, उपाय, ४ स्वभाव सन्मुख आत्मज्ञानी हो कर, ५ निश्चत, स्थिर, ६ ज्ञान की अचलता का नाम मोक्ष है, ७ वरण करता है

अबिनासी सुधारस पीवें अविकारी हैं।
चेतना विलास को प्रकास सो ही सार जान्यो,
अनुभौ रसिक ह्वै सरूप के सँभारी हैं।
कहे 'दीपचन्द' चिदानंद को लखत सदा,
ऐसे उपयोगी आप पद अनुसारी हैं।।१४५।।
अलख अखंड जोति ज्ञान को उद्योत लिए,
प्रगट प्रकास जाको कैसे ह्वै छिपाइये।
दरसन-ज्ञानधारी अविकारी आतमा है,
ताहि अवलोकि के अनंत सुख पाइये।
सिवपुरी कारण निवारण सकल दोष,
ऐसे भाव भए भवसिंधु तिरि जाइये।
चिदानंद देव देखि वाही में मगन हूजे,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
यातैं और भाव कोउ ठौर न अनाइये[1]।।१४६।।
करम के बंध जामें कोउ नाहिं पाइयतु,
सदा निरफंद[2] सुखकंद की धरणि है।
सपरस रस गंध रूप ते रहत सदा,
आतम अखंड परदेस[3] की भरणि है।
अक्ष सों अगोचर[4] अनंत काल सासती है,
अविनासी चेतना की होय न परणि[5] है।
सकति अमूरती[6] बखानी वीतरागदेव,
याके उर जाने दुखदंद की हरणि है।।१४७।।
कर्म करतूति ते अतीत है अनादि ही की,
सहज सरूप नहीं आन भाव करे है।
लक्षन सरूप की, नै[7] लक्षन लखावत है,

---

१ अपना उपयोग अन्य स्थान पर नहीं लगाइये, २ राग-द्वेष के द्वन्द्वों से रहित, ३ अखण्ड प्रदेश, ४ इन्द्रियातीत, ५ परिणामावना, अन्य के द्वारा परिणमन, ६ अमूर्तत्व शक्ति, ७ नय, कथन-पद्धति, एकदेश प्रमाण

तोऊ भेद–भाव रूप नहीं विसतरे है।
करता, करम, क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्तृत्व सकति अखंड रीति धरे है।
याही के गवेषी[1] होय ज्ञान मांहि लखि लीजे,
याही की लखनि[2] या अनंत सुख भरे है।।१४८।।
करम संजोग भोग भाव नाहिं भासतु है,
पद के विलास को न लेस पाइयतु है।
सकल विभाव को अभाव भयो सदाकाल,
केवल सुभाव सुद्धरस भाइयतु है।
एक अविकार अति महिमा अपार जाकी,
सकति अभोकतरि[3] महा गाइयतु है।
याही में परम सुख पावन सधत नीके,
याही के सरूप मांहि मन लाइयतु है।।१४६।।
पर है निमित्त ज्ञेय ज्ञानाकार होत जहां,
सहज सुभाव अति अमल अकंप है।
अतुल अबाधित अखंड है सुरस जहां,
करम कलंकनि की कोऊ नहीं झंप[4] है।
अमित अनन्त तेज भासत सुभाव ही में,
चेतना को चिन्ह जामें कोऊ की न चम्प[5] है।
परिनाम आतम सुसकति[6] कहावत है,
याके रूप मांहि आन आवत न संप[7] है।।१५०।।
काहू काल मांहि पररूप होय नहीं यह,
सहज सुभाव ही सो सुथिर रहतु है।
आन काज कारण जे सबै त्यागि दिए जहां,

१ अन्वेषक, खोजी, २ आत्मानुभूति, ३ लोश, रंच मात्र, ४ अभोक्तृत्व शक्ति, ५ आवरण, ६ दबाव, चाँप, ७ परिणाम शक्ति, ८ झलक, ६ अन्य के आकार, १० अकार्यकारणत्व शक्ति

कोऊ परकार[६] पर भाव न चहतु है।
याही तैं **अकारण अकारिज सकति** ही को,
अनादिनिधन श्रुत ऐसे ही कहतु है।
पर की अनेकता उपाधि मेटि एकरूप,
याको उर जाने तेई आनन्द लहतु है।।१५१।।
अपने अनन्त गुण रस को न त्यागि करे,
परभाव नहीं धरे सहज की धारणा।
हेय–उपादेय भेद कहो कहां पाइयतु,
वचनअगोचर में भेद न उचारणा।
मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
त्याग उपादान सून्य सकति[१] कहावे यामें,
महिमा अनन्त के विलासका उघारणा[२]।
केवली–उकत–धुनि[३] रहस रसिक जे हैं,
याको भेद जाने करे करम निवारणा।।१५२।।

दोहा

गुण अनन्तके रस सबै, अनुभौ रसके मांहि।
यातैं अनुभौ सारिखो, और दूसरो नाहिं।।१५३।।
पंच परम गुरु जे भए, जे हैंगे[४] जगमांहि।
ते अनुभौ परसाद ते, यामें धोखो नाहिं।।१५४।।

सवैया

ज्ञानावरणादि आठकरम अभाव जहां।
सकल विभाव को अभाव जहां पाइये।
औदारिक आदिक सरीर को अभाव जहां,
पर को अभाव जहां सदा ही बताइये।
याही ते **अभाव**[५] यह सकति बखानियतु,

---

१ त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति, २ व्यक्त, प्रकट करना, ३ सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि, ४ होंगे, ५ अभाव शक्ति

सहज सुभाव के अनन्त गुण गाइये।
याके उर जाने तत्त्व आतमीक पाइयतु,
लोकालोक ज्ञेय जहां ज्ञान में लखाइये।।१५५।।
दरसन ज्ञान सुख वीरज अनंतधारी,
मार्गदर्शक
सत्ता अविकारी ज्योति अचल अनंत है।
चेतना विलास परकास परदेशनि[1] में,
वसत अखंड लखे देव भगवंत है।
याही में[2] अनूप पद पदवी विराजतु है,
महिमा अपार याकी भाषत महंत है।
सहज लखाव सदा एक चिदरूप **भाव,**
सकति[3] अनंती जाने वंदे सब संत हैं।।१५६।।
परजाय भाव को अभाव समै–समै होय,
जल की तरंग जैसे लीन होय जल में।
याही परकार[4] करे उतपाद–व्यय धरे,
भाव को अभाव यहे सकति[5] अचल में।
सहज सरूप पद कारण बखानी महा,
वीतराग देव भेद लह्यो निज थल में।
महिमा अपार याकी रुचि किए पार भव,
लहे भवि जीव सुख पावे ज्ञान कल[6] में।।१५७।।
अनागत काल[7] परजाय भाव भए नाहिं,
तेई समै–समै होय सुख को करतु हैं।
याही तैं **अभाव भाव सकति**[8] बखानियतु,
अचल अखंड जोति भाव को भरतु हैं।
लच्छनि में लक्षण लखाइयतु याको महा,
याके भाव अविनासी रस को धरतु हैं।

---

१ प्रदेशों में, २ इसी में, ३ भावशक्ति, ४ इसी प्रकार, ५ अभावशक्ति, ६ सुख, ७ भविष्यत्काल, ८ अभावभाव शक्ति

कहिये कहां लों याकी महिमा अपार रूप,
चिदरूप देखें निजगुण अनुसरतु हैं ।।१५८।।
पर को अभाव जो अतीत काल हो आयो,
अनागत काल में हू देखिए अभाव है।
भाव नहीं जहां ताके कहिए अभाव तहां,
ताही को अभाव तातैं कीजे यो लखाव है।
अभाव अभाव यातैं सकति बखानियतु,
चिदानंद देव जाको सांचो दरसाव है।
याही के लखैया लक्ष्य लक्षण को जानतु हैं,
याके परसाद अविनासी भाव भाव हैं।।१५६।।
काल जो अतीत जामें जोई[1] भाव ह्वै तो जहां,
सो ही भाव भाव मांहि सदाकाल देखिये।
यातैं **भाव भाव**[2] यहे[3] सकति सरूप की है,
महिमा अपार महा अतुल विसेखिये।
चिद सत्ता भाव को लखाव सो है दरव में,
वह भाव गुणनि में सहज ही पेखिये।
यातैं **भावाभाव**[4] को सुभाव पावें तेई धन्य,
चिदानंद देव के लखैया जेई लेखिये।।१६०।।
स्वयं सिद्धि करता है निज परणामनि को,
ज्ञान भाव करता स्वभाव ही में कह्यो है।
सहज सुभाव आप करे करतार यातैं,
करता सकति[5] सुख जिनदेव लह्यो है।
निहचे विचारिए सरूप ऐसो आप ही को,
याके बिनु जाने भवजाल मांहि बह्यो है
करता अनंत गुण परिणाम केरो[6] होय,

१ जो ही, २ भावभाव शक्ति, ३ यह, ४ भावाभाव शक्ति, ५ कर्तृशक्ति, ६ का

ज्ञानी ज्ञान मांहि लखि थिर होय रह्यो है।।१६१।
आतम सुभाव करे करम कहावे सो ही,
सुख को निधान परमाण पाइयतु है।
लक्षण सुभाव गुण पोखत[1] पदारथ को,
ग्रंथ ग्रंथमांहि जस जाको गाइयतु है।।
करम सकति[2] काज आतम सुधारतु है,
चिदानंद चिन्ह महा यों बताइयतु है।
लक्षन तैं लक्ष्य सिद्धि कही जिनआगम में,
यातैं भाव भावना को भाव भाइयतु है।।१६२।।
आप परिणाम करि आप पद साधतु है,
साधन सरूप सो ही करण बखानिये।
आप भाव भए आप भव ही की सिद्धि होत,
और भाव भए भावसिद्धि नहीं मानिये।
करण सकति[3] करे एक में अनेक सिद्धि,
एक है अनेक मांहि नीके उर आनिये।
निहचे अभेद किए भेद नाहीं भासतु है,
ज्ञान के सुभाव करि ताको रूप जानिये।।१६३।।
आपने सुभाव आप आपन को दए आप,
आप ले अखंड रसधारा बरसावे है।
संप्रदान सकति[4] अनंत सुखदायक है,
चिदानंद देव के प्रभाव को बढ़ावे है।
याही में अनंत भेद नानावत भासतु है,
अनुभौ सुरसस्वाद सहज दिखावे है।
पावत सकति ऐसी पावन परम होय,
सारो जग जस जाको जगि-जगि गावे है।।१६४।।

---

१ पोषण करता है, २ कर्म शक्ति, ३ करण शक्ति, ४ सम्प्रदान शक्ति,

आपनो[१] अखंड पद सहज सुथिर महा,
करे आप आप ही तैं यहे **अपादान**[२] है।
सासतो[३] खिणक[४] उपादान करे आप ही तैं,
आप है अनंत अविनासी सुखथान है।
याही तैं अनूप चिदरूप रूप पाइयतु,
यातैं सब सकति में परम[५] प्रधान है।
अचल अमल जोति भाव को उद्योत लिये,
जाने सो ही जान[६] सदा गुण को निधान है।।१६५।।
किरिया[७] करम सब संप्रदान आदिक को,
परम अधार अधिकरण कहीजिये।
दरसन ज्ञान आदि वीरज[८] अनंत गुण,
वाही के अधार यातैं वामें थिर हूजिये।
याही की महतताई गाई सब ग्रंथनि में,
सदा उपादेय सुद्ध आतम गहीजिये।
सकति अनंत को अधार एक जानियतु,
याही तैं अनंत सुख सासतो लहीजिये।।१६६।।
पर को दरव खेत काल भाव चार्‍यों[९] यह,
सदा काल जामें पर सत्ता को अभाव है।
याही तैं **अतत्त्व महा सकति**[१०] बखानियतु,
अपनी चतुक[११] सत्ता ताको दरसाव है।
आन को अभाव भए सहज सुभाव है है,
जिनराज देवजी को वचन कहाव है।
याके उर जाने तैं अनंत सुख पाइयतु,
एक अविनासी आप रूप को लखाव है।।१६७।।

---
१ अपना, २ अपादान शक्ति, ३ शाश्वत, त्रैकालिक ध्रुव, ४ क्षणिक, तात्कालिक, ५ परमात्मा, विभुत्व शक्ति, ६ ज्ञान, ७ क्रिया, ८ वीर्य, ६ चारों, १० अतत्त्व शक्ति, ११ चतुष्क, चारों की

आतमसरूप जाके कहे हैं अनंत गुण,
चिदानंद परिणति कही परजाय है।
दोऊ मांहि व्यापिके सदैव रहे एक रूप,
एकत्व सकति ज्ञानी ज्ञान में लखाय है।
सुख को समुद्र अभिराम आप दरसावे,
जाके उर देखे सब दुविधा मिटाय है।
सहज सुरस को विलास यामें पाइयतु,
सदा सब संतजन जाके गुण गाय है।।१६८।।
एक द्रव्य व्यापिके अनेक गुण परजाय,
अनेकत्व सकति अनंत सुखदानी है।
लक्षन[1] अनेक के विलास जे अनंते महा,
करि है सदैव याही अति अधिकानी है।
प्रगट प्रभाव गुण गुण के अनंते करे,
ऐसी प्रभुताई जाकी प्रगट बखानी है।
महिमा अनंत ताकी प्रगट प्रकाशरूप,
परम अनूप याकी जग में कहानी है।।१६६।।
देखत सरूप के अनंत सुख आतमीक,
अनुपम है है जाकी महिमा अपार है।
अलख अखंड जोति अचल अबाधित है,
अमल अरूपी एक महा अविकार है।
सकति[3] अनंत गुण धरे है अनंते जेते,
एकमें अनेक रूप फुरे[4] निरधार है।
चेतना झलक भेद धरे हू अभेदरूप,
ज्ञायक सकति जाने जाको विसतार है।।१७०।।

---

१ लक्षण, २ अनन्त, ३ शक्ति, ४ स्फुरायमान, प्रकट होती है.

स्वसंवेद ज्ञान उपयोग में अनंत सुख,
अतिंद्री अनूपम है आप का लखावना।
भव के विकार भार कोऊ नहीं पाइयतु,
चेतना अनंत चिन्ह एक दरसावना।
ऐसी अविकारता सरूप ही में सासती है,
सदा लखि लीजे तातै सिद्धपद पावना।
आतमीक ज्ञान मांहि अनुभौ विलास महा,
यह परमारथ सरूप का बतावना।।१७१।।
ज्ञान गुण जाने जहां दरसन देखतु है,
चारित सुथिर है सरूप में रहतु है।
वीरज अखंड वस्तु ताको निहपन्न[1] करे,
परम प्रभाव गुण प्रभुता गहतु है।
चेतना अनंत व्यापि एक चिदरूप रहे,
यह है विभूत[2] ज्ञाता ज्ञान में लहतु है।
महिमा अपार अविकार है अनादि ही की,
आप ही में जाने जेई जग में महतु है।।१७२।।
सहज अनूप जोति परम अनूपी महा,
तिहुँलोक भूप चिदानंद–दशा दरसी।
एक सुद्ध निहचे अखंड परमातमा है,
अनुभौ विलास भयो ज्ञानधारा बरसी।
अपनो सरूप पद पाए ही तैं पाई यह,
चेतना अनंत चिन्ह सुधारस सरसी,
अतुल सुभाव सुख लह्यो आप आप ही में,
याही तैं अचल ब्रह्म पदवी को परसी[3]।।१७३।।
अरूझि[4] अनादि न सरूप की सँभार करी,

---

१ निष्पन्न करता है, २ विभूति, विभुत्व ३ स्पर्श किया ४ उलझन,

पर पद मांहि रागी भए पग–पग में।
चहुँ गति मांहि चिर दुःखपरिपाटी सही,
सुख को न लेश लह्यो भम्यो[1] अति जग में।
गुरुउपदेश पाय आतम सुभाव लहे,
सुद्धदिष्टि[2] देहे सदा सांचे ज्ञान–नग में।
महिमा अपार सार आपनो सरूप जान्यो,
तेई सिवसाधक है लागे मोक्ष–मग में।।१७४।।
ज्ञानमई मूरति में ज्ञानी ही सुथिर रहे,
करे नहीं फिरि कहुं आन की उपासना।
चिदानन्द चेतन चिमतकार चिन्ह जाको,
ताको उर जान्यो मेटी भरम की वासना।
अनुभौ उल्हास में अनंत रस पायो महा,
सहज समाधि में सरूप परकासना।
बोध–नाव बैठि भव–सागर को पार होत,
शिव[3] को पहुंच करे सुख की विलासना।।१७५।।
ब्रह्मचारी गृही मुनि क्षुल्लक न रूप ताको,
क्षत्री वैस्य[4] ब्राह्मण न सुंदर सरूप है।
देव नर–नारक न तिरजग[5] रूप जाको,
वाके रूप मांहि नाहिं कोऊ दौरधूप[6] है।
रूप रस गंध फास[7] इन ते वो रहे न्यारो,
अचल अखंड एक तिहुंलोक भूप है।
चेतनानिधान ज्ञानजोति है सरूप महा,
अविनासी आप सदा परम अनूप है।।१७६।।
विधि न निषेध भेद कोऊ नहीं पाइयतु,

---

१ घूमा, भ्रमण, किया, २ शुद्ध नय की दृष्टि ३ मुक्ति, मोक्ष, ४ वैश्य, महाजन, ५ तिर्यंच, ६ दौड़धूप, ७ स्पर्श

वेद न वरण लोकरीति न बताइये।
धारणा न ध्यान कहुं व्यवहारीज्ञान कह्यो,
विकलप[1] नाहिं कोउ साधन न गाइये।
पुन्य–पाप–ताप तेउ[2] तहां नहीं भासतु है,
चिदानन्दरूप की सुरीति ठहराइये।
ऐसी सुद्धसत्ता की समाधिभूमि कही जामें,
सहज सुभाव को अनंतसुख पाइये।।१७७।।
विषैसुख भोग नाहीं रोग न विजोग[3] जहां,
सोग[4] को समाज जहां कहिये न रंच है।
क्रोध मान माया लोभ कोउ नहीं कहे जहां,
दान शील तप को न दीसे परपंच[5] है।
करम कलेस लेस[6] लख्यो नहीं परे जहां,
महा भवदुःख जहां नहीं आगि अंच[7] है।
अचल अकंप अति अमित अनंत तेज,
सहज सरूप सुद्ध सत्ता ही को संच[8] है।।१७८।।
थापन न थापना उथापना[9] न दीसतु है,
राग–द्वेष दोउ नहीं पाप पुन्य अंस है।
जोग न जुगति जहां भुगति न भावना है,
आवना न जावना न करम को वंस[10] है।
नहीं हारि–जीति जहां कोऊ विपरीति नाहिं,
सुभ न असुभ नहीं निंदा–परसंस[11] है।
स्वसंवेदज्ञान में न आन कोऊ भासतु है,
ऐसो बनि रह्यो एक चिदानंद हंस[12] है।।१७६।।
करण करावण को भेद न बताइयतु,

---

१ विकल्प, २ वे भी, ३ वियोग, ४ शोक, ५ विस्तार, ६ अंश मात्र, अल्प, ७ अग्नि–ताप, ८ साँचा, ६ उत्थापन करना, निर्मूल करना, १० वंश, कुल, ११ प्रशंसा १२ शुद्धात्मा

नानावत[1] भेस नहीं कहीं परदेस है।
अधो मध्य ऊरध विसेख[2] नहीं पाइयतु,
कोउ विकलप केरो नहीं परवेस[3] है।
भोजन न वास जहां नहीं वनवास तहां,
भोग न उदास जहां भव को न लेस है।
स्वसंवेद ज्ञान में अखंड एक भासतु है,
देव चिदानन्द सदा जग में महेस है।।१८०।।
देवन के भोग कहुं दीसें नहीं नारक में,
सुरलोक मांहि नहीं नारक की वेदना।
अंधकार मांहि कहुं पाइये उद्योत नाहिं,
परम अणू के मांहि भासतु न वेदना।
आतमीक ज्ञान में न पाइये अज्ञान कहुं,
वीतराग भाव में सराग की निषेदना[4]।
अनुभौ विलास में अनंत सुख पाइयतु,
भव के विकार ताकी भई है उछेदना[5]।।१८१।।
आग तैं पतंग[6] यह जल सेती[7] जलचर,
जटा के बढाये सिद्धि है तो बट[8] धरे हैं।
मुंडन तैं उरणिये[9] नगन रहे तैं पशु,
कष्ट को सहे ते तरु कहुं नाहिं तरें हैं।
पठन तैं शुक बक ध्यान के किए कहुं,
सीझे नाहिं सुने यातैं भवदुख भरे हैं।
अचल अबाधित अनुपम अखंड महा,
आतमीक ज्ञान के लखैया सुख करे हैं।।१८२।।
तीनसै तियाल[10] राजू खेलत अनादि आयो,

---

१ अनेक प्रकार के, २ विशेष, ३ प्रवेश, ४ निषेध, ५ नाश, ६ सूर्य, ७ से, ८ वट वृक्ष, ९ वनवासी तपस्वी, १० तीन सौ तैंतालीस (३४३) राजू ऊँचाई

अरुझि अविद्या मांहि महा रति मानी है।
अपने कल्याण को न अंगीकार[1] करे कहुं,
तत्त्व सों विमुख जगरीति सांची जानी है।
इंद्रजालवत भोग वंचिके[2] विलाय जाय,
तिन ही की चाहि करे ऐसो मूढ प्रानी है।
ऐसी परबुद्धि सब छिन ही में छूटत है,
आप पद जाने जो तो होय निज ज्ञानी है।।१८३।।
तिहुंलोक चाले जाते ऐसो वज्रपात परे,
जगत के प्राणी सब क्रिया तजि देतु हैं।
समकिती जीव महा साहस करत यह,
ज्ञान में अखंड आप रूप गहि लेतु हैं।
सहज सरूप लखि निर्भय अलख होय,
अनुभौ विलास भयो समता समेतु[3] हैं।
महिमा अपार जाकी कहि है कहां लों कोय,
चेतन चिमतकार ताही में सचेतु[4] है।।१८४।।
कमलनी पत्र जैसे जल सेती[5] बंध्यो रहे,
याकी यह रीति देखि नय व्यवहार में।
जल को न छीवे वह जल सो रहत न्यारो,
सहज सुभाव जाको निहचे विचार में।
तैसे यह आतमा बंध्यो है परफंद[6] सेती[7],
आपणी ही भूलि आपो मान्यो अरुझार[8] में।
पाए परमारथ के पर सों न पग्यो कहुं,
आपनो अनंत सुख करे समैसार में।।१८५।।
पदमनीपत्र[9] सदा पय[10] ही में पग्यो रहे,

---

१ स्वीकार, २ ठगा कर, ३ सहित, ४ सावधान, ५ से (द्वारा), ६ राग-द्वेष, मोह, ७ से (द्वारा), ८ अध्यवसान रूप उलझन ६ कमलिनी का पत्ता, १० जल

सब जन जाने वाके पय को परस है।
अपने सुभाव कहु पय को न परसे है,
सहज सकति लिए सदा अपरस[1] है।
तैसे परभाव यह परसि मलीन भयो,
लियो नहीं आप सुख महा परवस है।
निहचे सरूप परवस्तु को न परसे है, आचार्य श्री सुविधिसागर जी मह
अचल अखंड चिद एक आप रस है।।१८६।।
जैसे कुंभकार कर मांहि[2] गारपिंड[3] लेय,
भाजन[4] बनावे बहु भेद अन्य-अन्य है।
माटीरूप देखे और भेद नहीं भासतु है,
सहज सुभाव ही ते आप ही अनन्य है।
गति गति माहिं जैसे नाना परजाय धरे,
ऐसो है सरूप सो तो व्यवहारजन्य है।
अन्य संग सेती यह अन्य सो कहावत है,
एकरूप रहे तिहुंलोक कहे धन्य है।।१८७।।
सिंधु में तरंग जैसे उपाजे विलाय जाय,
नानावत[5] वृद्धि-हानि जामें यह पाइये।
अपने सुभाव सदा सागर सुथिर रहे,
ताको व्यय-उतपाद कैसे ठहराइये।
तैसे परजाय मांहि होय उतपति लय,
चिदानन्द अचल अखंड सुद्ध गाइये।
परम पदारथ में स्वारथ सरूप ही को,
अविनासी देव आप ज्ञानजोति ध्याइये।।१८८।।
चेतन अनादि नव तत्त्व में गुपत भयो,

---

१ स्पर्श रहित, २ हाथ में, ३ मिट्टी-गारे का पिण्ड, ४ बर्तन, ५ अनेक रूप

सुद्ध पक्ष देखे स्वसुभावरूप आप है।
कनक[1] अनेक वान[2] भेदको धरत तोऊ[3],
अपने सुभाव में न दूसरो मिलाप है।
भेद भाव धरहू अभेदरूप आतमा है,
अनुभौ किए ते मिटे भवदुखताप है।
जानत विशेष यो असेष[4] भाव भासतु है,
चिदानंद देव में न कोऊ[5] पुण्य पाप है।।१८९।।
फटिक[6] के हेठि[7] जब जैसो रंग दीजियत,
तैसो प्रतिभासे वामें[8] वाही को सो रंग है।
अपनो सुभाव सुद्ध उज्जल विराजमान,
ताको नहीं तजे और गहे नहिं संग है।
तैसे यह आतमा हूं पर मांहि पर ही सो भासे,
पै सदैव याको चिदानंद अंग है।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
याही तैं अखंड पद पावे जग मांहि जेई[9],
स्यादवादनय गहे सदा सरवंग[10] है।।१९०।।

छप्पय

परम अनूपम ज्ञानजोति लछमी करि मंडित।
अचल अमित आनंद सहज ते भयो अखंडित।
सुद्ध समय में सार रहित भवभार[11] निरंजन
परमातम प्रभु पाय भव्य करि है भवभंजन।
महिमा अनंत सुखसिंधु में, गणधरादि वंदित चरण।
शिवतिय वर तिहुंलोकपति जय–जय–जय जिनवरसरण।

---

१ स्वर्ण, २ स्वरूप, २ तब भी, ४ सम्पूर्ण, ५ किसी प्रकार का, ६ स्फटिक मणि, ७ पास में, ८ उसमें, ९ वे ही, १० सम्पूर्ण, अखण्ड, ११ संसार–भार

दोहा

सकल विरोध विहंडनी[1] स्यादवादजुत जानि।
कुनयवादमतखंडनी, नमों देवि जिनवानि[2]।।१६२।।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अथ ग्रंथ-प्रशंसा

सवैया

अलख अराधन अखंड जोति साधनसरूप
की समाधि को लखाव दरसावे है।
याही के प्रसाद भव्य ज्ञानरस पीवतु है,
सिद्ध सो अनूप पद सहज लखावे है।
परम पदारथ के पायवे को कारण है,
भवदधितारण जहाज गुरु गावे है।
अचल अनंत सुख–रतन दिखायवे को,
ज्ञानदरपण ग्रंथ भव्य उर भावे है।।१६३।।

दोहा

आपा लखवे को यहै, दरपणज्ञान गिरंथ।
श्रीजिनधुनि अनुसार है, लखत लहे शिवपंथ।।१६४।।
परम पदारथ लाभ है, आनंद करत अपार।
दरपणज्ञान गिरंथ यह, कियो 'दीप' अविकार।।१६५।।
श्रीजिनवर जयवंत है, सकल संत सुखदाय।
सही परम पदको करे, है त्रिभुवन के राय।।१६६।।

इति श्री शाह दीपचन्द साधर्मी कृत ज्ञानदर्पण ग्रन्थ समाप्त।

---

१ समाप्त करने वाली, खण्डित करने वाली, २ जिनवाणी

स्वरूपानन्द

दोहा

परमदेव परमातमा, अचल अखण्ड अनूप।
विमल ज्ञानमय अतुल पद, राजत ज्योतिसरूप।।१।।

सवैया

एक अनादि अनूप वण्यो नहिं, काहू कियो अरु ना विछुरेगो।
या जग के पद ये पर हैं सब, ना करे ना कर नाहिं करेगो।।
वस्तु सो वस्तु अवस्तु न वस्तु सों, नाहीं टर्‌यो अरु नाहिं टरेगो।।
आप चिदानन्द के पद को सुधर्‌या, यो धरे अरु आगू[1] धरेगो ।।२।।
आप अनादि अखण्ड विराजत काहू पै[2] खण्ड कियो नहीं जैहै[3]।
जो भव में भटक्यो तो उसास तो[4], ज्ञानमई पद और न पैहै[5]।।
चेतन ते न अचेतन ह्वै कहूं, यों सरधान किये सुख लैहैं।।
'दीप' अनूप सरूप महा लखि,तेरो सदा जग में जस ह्वै हैं[6]।।३।।
या जग में यह न्याय अनादि को,काहू की वस्तु को कोउ न छीवे[7]।
देह मलीन में लीन ह्वै दीन ह्वै, देखे महादुख आप सदीवे[8]।।
याकी लगनि करे फिर वे दुख, देखि है या भव मांहि अतीवे[9]।
याही तैं आपकी आप गहें निधि, ज्ञानी सदा सुख अमृत पीवे।।४।।
कोरि[10] अनंत कहो किम तो कहुं, तू पर को मति ना अपनावे।
ईश्वर आपहि आप वण्यो तुव[11], लागि[12] पराश्रय क्यों दुख पावे।।
धारि समान[13] सुसीख धरो उरि, श्रीगुरुदेव यों तोहि बतावे।

---

१ आगे, भविष्य में, २ किसी के द्वारा, ३ जाएगा, ४ क्लेश पाता, ५ प्राप्त करेगा, ६ होगा, ७ स्पर्श करे, ८ सदा ही, ९ अत्यन्त, १० करोड़, ११ तेरे, १२ के लिए, १३ साम्य भाव

संत अनेक तिरे इह रीति सों, याकं गहे तू अमर कहावे।।५।।
चिर ही ते देव चिदानंद सुखकंद वणो, धरे गुणवृंद भवफंद न बताइये।
महा अविकार रस में सार तुम राजत हो, महिमा अपार कहो कहां लगि गाइये।।
सुख को निधान भगवान अमलान एक, परम अखंड जोति उर में अनाइयें[1]।
अतुल अनूप चिदरूप तिहुंलोक भूप, ऐसो निज आप रूप भावन मेंभाइये।।६।।

सवैया

आप अनूप सरूप बण्यो, परभावन को तुव[2] चाहत काहे।
धरि अमृत मेटन को तिस, भाडली[3] को लखि ज्यों सठ[4] जाहे[5]।।
तैसो कहा न करो मति भूलि, निधान लखो निज ल्यों[6] किन[7] लाहे[8]।
लोक के नाथ या सीख लहो मति, भीख गहो हित जो तुम चाहे।।७।।
तेरो सरूप अनादि आगू गहे, है सदा सासतो सो अब ही है।
भूलि धरे भव भूलि रह्यो अब, मूल गहो निज वस्तु वही है।।
अजाणि[9] ते और ही जाणि गही सुध, वाणिकी[10] हाणि न होय कही है।
भौरि[11] भई सुभई वह भोरि, सरूप अबै सुसंभारि सही है।।८।।
तेरी ही वाणि[12] कुवाणि[13] परी अति, ओर ही ते[14] कछु ओर गही है।
सदा निज भाव को है न अभाव, सुभाव लखाव करे ही लही है।।
बिना पुन्य पापन को भव–भाव, अनूपम आप सु आप मही है।
भोरि भई सुभई वह भोरि, अबै सुसरूप[15] संभारि सही है।।६।।
तेरी ही वोर[16] को होय धुके[17] किन,काहे को ढूंढत जात मही है।

---

१ उपयोग में ज्ञानस्वभाव ग्रहण कीजिए, २ तुम, ३ मृगमरीचिका, मिथ्या जल का भ्रम, ४ अज्ञानी, मूर्ख, ५ प्राप्त करने जाता है, ६ लौ, लीनता, ७ क्यों नहीं, ८ लाते हो, ६ अज्ञानता से, १० स्वरूप की, ११ भोली–भाली, १२ स्वरूप, १३ कुटेव १४ प्रारम्भ से, ठेठ से, १५ अपना स्वरूप, १६ स्वभाव, १७ झुकता है,

है घर में निधि जाचत है पर, भूलि यहे नहीं जात कही है।।
तू भगवान फिरे कहू आन[1], बिना प्रभु जाणि कुवाणि[2] गही है।
भोरि भई सुभई वह भोरि, अबै लखि 'दीप' सरूप सही[3] है।।१०।।
लगे ही लगे पर मांहि पगे, ये सगे लखि के निज वोर न आये।
लोक के नाथ प्रभु तु आथ,[4] किये पर साथ कहा सुख पाये।।
देखो निहारि के आप संभारि, अनूपम वे गुण क्यों विसराये।
अहो गुणवान अबै घूरो[5] ज्ञान, लहा सुख सो भगवान बताये।।११।।
बानर[6] मूंठि[7] न आपही खोले, कांच के मंदिर स्वान[8] भुसाये[9]।
भाडली[10] को लखि दौरत हैं मृग, नैंक[11] नहीं जल देत दिखाये।।
सुक[12] हू नलिनी दिढतर पकरी, भूलि तैं आपही आप फंदाये[13]।
बिनु ज्ञान दुखी भव मांहि भये, सो ही सुखी जिहि आप लखाये।।१२।।
वारि[14] लखे घन[15] हू वरषे, निजपक्ष[16] में चन्द करे परकासा।
रितु[17] को लखिके बनराय[18] फूले[19] जाने समो पसु हू ग्रहे वासा।।
सीप हू स्वाति नक्षत लखे सुपरे[20] जल बूंद ह्वै मुक्तविकासा।
पूज्य पदारथ यो समो[21] ना लखे, यों जग मैं है अजब तमासा।।१३।।
देव चिदानन्द है सुखकन्द, लिये गुणवृन्द सदा अविनासी।
आनन्दधाम महा अभिराम, तिहू जग स्वामि सुभाव विकासी।।
हैं अमलान प्रभु भगवान, नहीं पर आन[22] है ज्ञान प्रकासी।
सरूप विचारि लखे यह सन्त, अनूप अनादि है ब्रह्म विलासी।।१४।।
नहीं भवभाव विभाव जहां, परमातम एक सदा सुखरासी।
वेद पुराण बतावत हैं जिहि, ध्यावत हैं मुनि होय उदासी।।

---

१ अन्य स्थान पर, २ खोटी रीति, ३ सम्यक्, ४ प्रारम्भ से, ५ अपूर्ण, अधूरा, ६ बन्दर, ७ मुट्ठी, ८ कुत्ता, ९ भौंकते हैं, १० मृगमरीचिका, ११ थोड़ा, १२ तोता, १३ फँसे हुए, १४ जल, १५ बादल, १६ शुक्ल पक्ष, १७ ऋतु, मौसम, १८ वन–पंक्ति, १९ विकसित होती, २० भली पड़ती है, २१ समान, २२ अन्य

ज्ञानसरूप तिहूं जगभूप, वण्यो[1] चिदरूप है ज्योतिप्रकासी।
सरूप विचारि लखे यह सन्त, अनूप अनादि है ब्रह्मविलासी।।१५।।

सवैया

नहीं जहां क्रोध मान माया लोभ है कषाय,
जगत को जाल जहां नहीं दरसाय है।
करम कलेस परवेस[2] नहीं पाइयत,
जहां भव–भोग को संजोग न लखाय है।
जहां लोक वेद तिया पुरुष नपुंसक ये,
बाल वृद्ध जुवान भेद कोउ नहीं थाय है[3]।
काल न कलंक कोउ जहां प्रतिभासतु है,
केवल अखंड एक चिदानन्दराय है।।१६।।
जहां भव–भोग को विलास नहीं पाइयत,
राग–दोष दोउ जहां भूलि हू[4] न आय है।
जग उतपति जहां प्रलै[5] न बताइयत,
करम भरम सब दूरि ही रहाय है।।
साधन न साधना न काहू की अराधना है,
निराबाध आप रूप आप थिर थाय है[6]।।
सहज प्रकास जहां चेतना विलास लिये,
केवल अखंड एक चिदानंदराय है।।१७।।
मोह की मरोर[7] को न जोर जहां भासतु है,
नांहिं परकासतु[8] है पर परकासना।।
करम कलोल जहां कोउ नहीं आवत है,

---

१ बना हुआ, सहज, २ प्रवेश, ३ होता है, ४ भूल कर भी, ५ प्रलय, ६ स्थिर होता है, ७ मरोड़, ८ प्रकाशित होता है

सकल विभाव की न दीसत विकासना।।
आनंद अखंड रस परखे सदैव जहां,
होत हैं अनंत सुखकंद की विलासना।
ज्ञान दिष्टि धारि देखि आप हिये राजतु है,
अचल अनूप एक चिदानंद भासना।।१८।।
देव नारक ये तिरजग[1] ठाठ सारे सो तो,
एक तेरी भूलि ही का फल पावना।
तू तो सत चिदानंद आपको पिछाने नाहिं,
राग–दोष–मोह केरी[2] करत उपावना[3]।।
पर की कलोल में न सहज अडोल पावे,
याही तैं अनादि कीना भव भटकावना।
आनंद के कंद अब आपको संभारि देखि,
आतमीक आप निधि होय विलसावना।।१९।।
तू ही ज्ञानधारी क्या भिखारी भयो डोलत है,
सकति संभारि सिवराज क्यों न करे है।
तू ही गुणधाम अभिराम अतिआनंद में,
आप भूलि का हम ही सब दुख भरे है।
तू ही चिदानन्द सुखकंद सदा सासतो है,
दुखदाई देह सों सनेह कहा धरे है।।
देवन के देव जो तो आप तू लखावे आप तो
भव–बाधा एक छिन मांहि हरे है।।२०।।
सहज आनंद सुखकंद महा सासतो है,
तेरो पद तोही में विराजत अनूप है।

---

१ तीन लोक, २ की (षष्ठी विभक्ति), ३ उपाय.

ताहि तू विचारि और काहे[1] पर ध्यावत है,
परम प्रधान सदा सुद्ध चिदरूप है।।
अचल अखंड अज अमर अरूपी महा,
अतुल अमल एक तिहुंलोक भूप है।
आन धंध[2] त्यागि देखि चेतना निधान आप,
ज्ञानादि अनंत गुण व्यकत[3] सरूप है।।२१।।
कह्यो बार–बार सहज सरूप तेरो,
सुखरासी सुद्ध अविनासी वणि[4] रह्यो है।
दरसन ज्ञान अमलान है अनूप महा,
परम प्रधान भगवान देव कह्यो है।।
सदा सुखथान केरो[5] नायक निधानगुण,
अतुल अखंड ज्ञानी ज्ञान मांहि गह्यो है।
और तजि भाव यो लखाव करि निहचे में,
स्वसंवेद भूमि यो हमारो हम लह्यो[6] है।।२२।।

दोहा

परम अनंत अखंड अज, अविनासी सुखधाम,
प्रभु वंदत पद निज लहे, गुण अनूप अभिराम।।२३।।
श्रीजिनवर पद वंदिके, ध्यान सार अविकार।
भवि हित काज करतु हो, धरि भवि है भवपार।।२४।।

सवैया

सिद्धथान मांहि जेते सिद्ध भये ते ते सही,
आतमीक ध्यान ते अनूप ते कहाये हैं।
धारिके धरमध्यान सुर नर भले भये,

---

१ क्यों, २ धन्धा (विषय–कषाय का व्यापार), ३ प्रकट, गुणों का प्रकाशित, ४ बन रहा है, सहज, ५ का, ६ स्वात्मानुभूति की भूमिका में जो 'हूँ' वही प्राप्त किया है।

आरति को ध्यान धारि तिरजंच थाये हैं।।
रौद्र ध्यान सेती महा नारकी भये हैं जहां,
विविध अनेक दुख घोर वीर पाये हैं।
संसारी मुक्त दोउ भये एक ध्यान ही ते,
सुद्धध्यान धार जो तो स्वगुण सुहाये हैं।।२५।।
आप अविनासी सुखरासी हैं अनादि ही को,
ध्यान नहीं धर्‌या तातैं फिर्‌यो तू अपार है।
अब तू सयानो होहु सुगुरु बतावतु है,
आप ध्यान धरे तो ही[1] लहे भवपार है।।
चिदानन्द जाका अविनाशी राज दे हैं आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
यातैं गुरुदेव यो बखान्यो ध्यान सार है।
अतुल अबाधित अखंड जाकी महिमा है,
ऐसो चिदानंद पावे याको उपकार है।।२६।।
साम्यभाव स्वारथ जु समाधि जोग चित्तरोध,
शुद्ध उपयोग की ढरणि ढार ढरे है[2]।
लय[3] प्रसंज्ञात[4] में न वितर्क वीचार[5] आवे,
वितर्क[6] वीचार[7] अस्मि[8] आनंदता[9] करे है।
पर को न अस्मि[10] कहे पर को न सुख लहे,
आप को परखि के विवेकता[11] को धरे है।
आतम धरम में अनंत गुण आतमा के
निहचे में पर पद परस्यो[12] न परे है।।२७।।

---

१ मुद्रित पाठ है-- तौ तौ, २ शुद्धोपयोग में पर्याय सतत द्रव्य की ओर ढलती अनुभव में आती है, ३ परिणामों की लीनता, ४ जाननहारे को जान कर तन्मय समाधिस्थ होना, ५ समाधि के १३ भेदों में से एक, वितर्कानुगत समाधि, ६ वीतराग निर्विकल्प समाधि, ७ स्वपद की प्रतीति, ८ स्वरूपमग्नता, ९ आनन्दानुगत समाधि, १० निरस्मिदानुगत समाधि, ११ विवेकख्याति समाधि (विशेष जानकारी के लिए 'चिद्‌विलास' का अध्ययन आवश्यक है)। १२ मुद्रित पाठ "परस्यौ" है।

दोहा

एक अशुद्ध जु शुद्ध है, ध्यान दोय परकार।
शुद्ध धरे भवि जीव है, अशुध धरे संसार।।२८।।
शुद्ध ध्यान परसाद ते, सहज शुद्ध पद होय।
ताको वरणन अब करो दुख नहीं व्यापे कोय।।२९।।

सवैया

प्रथम धरम ध्यान दूजो है सुकलध्यान,
आगम प्रमाण जामें भले दोउ ध्यान हैं।
पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ रूपातीत,
अध्यातम विवक्षा मांहि ध्यान ये प्रमाण हैं।।
मन को निरोध महा कीजियतु ध्यान मांहि,
यातैं सब जोगन में ध्यान बलवान है।
पौन वसि किये सेती मन महा वसि होय,
यातैं गुरुदेव कहे पवन विज्ञान है।।३०।।
परिणाम नै[1]–निक्षेप कहे सब ध्यान कीजे,
सब ही उपायन में यो उपाय सार है।
देवश्रुत गुरु सब तीरथ जु प्रतिमाजी,
चिदरूप ध्यान काजे[2] सेवे गुणधार हैं।।
विवहार विधा[3] सोहू एकागर[4] तातैं सधे,
तातैं ध्यान परधान महा अविकार है।
केवली उकति[5] वेद याके गुण गावत हैं,
ऐसो ध्यान साधि सिद्ध होय सुखकार है।।३१।।

---

१ नय, २ के लिए, ३ प्रकार, ४ एकाकार, ५ जिनवाणी,

आज्ञा भगवान की मैं उपादेय आप कह्यो,
तामें[1] थिर हूजै यह आज्ञाविच[2] ध्यान है।
करम को नाश करै जाही के प्रभाव सेती
ताको ध्यान कह्यो सुखकारी भगवान है।
करमविपाक में न खेदखिन होय कहूं
ऐसे निज जाने तीजो[3] ध्यान परवान[4] है।
संसथान[5] लोक लखि[6] लखे निज आतमा को,
ध्यान के प्रसाद पद पावे सुखवान है।।३२।।
दरवि सों गुण ध्यावे गुणन ते परजाय,
अरथांतर सदा यो भेद कह्यो ध्यान को।
ज्ञान हो दरशन हो सबद सों शब्दान्तर
अस्मि शब्द रहे भेद जोगांतर थान को।।
प्रथक्त्ववितर्क के हैं भेद—ये विचार लिये,
ज्ञानवान जाने भेद कह्यो भगवान को।
अतुल अखंड ज्ञानधारी देव चिदानंद,
ताको दरसावे पद पावे निरवाण को।।३३।।
एकत्वरूप मांहि थिर ह्वै स्वपद शुद्ध,
कीजे आप ज्ञान भाव एक निजरूप में।
घातिकर्म नाश करि केवल प्रकाश धरि,
सूक्ष्म ह्वै जाग[7] सुख पावे चिदभूप में।।
मेटि विपरीत क्रिया करम सकल भानि,
परम पद पाय नहीं परे भौ कूप[8] में।
यातैं यह ध्यान निरवाण पहुंचावत है,
अचल अखंड जोति भासत अनूप[9] में।।३४।।

---

१ आत्मस्वभाव में, २ आज्ञाविचय धर्मध्यान, ३ विपाक विचय धर्मध्यान, ४ प्रमाण, ५ संस्थानविचय धर्मध्यान, ६ आत्मावलोकन कर, ७ उपयोग को सावधान पूर्वक सूक्ष्म कर, ८ संसार रूपी कुआ, ९ अनुपम (शुद्धात्म स्वरूप).

मंत्र पद साधि करि महा मन थिर धरि,
पदस्थ ध्यान साधते स्वरूप आप पाइये।
आपना स्वरूप प्रभुपद सोही पिंड में
विचारिके अनूप आप उर में अनाइये।
समवसरण विभौ[1] सहित लखीजे आप,
ध्यानमें प्रतीति धारि महा थिर थाइये।
रूप सो अतीत सिद्धपद सों जहां
ध्यान मांहि ध्यावे सोही रूपातीत गाइये।।३५।।
पवन सब साधिके अलख अराधियत[2],
सो ही एक साधिनी स्वरूप काजि कही है।
अविनासी आनंद में सुखकंद पावतेई,
आगम विधान ते ज्या ध्यान रति लही है।।
ध्यान के धरैया भवसिंधु के तिरैया भये,
जगत में तेऊ धन्य ध्यान विधि चही है।
चेतना चिमतकार सार जो स्वरूप ही को,
ध्यान ही तें पावे ढूंढ़ि देखो सब मही है।।३६।।

दोहा

परम ध्यान को धारि के, पावे आप सरूप।
ते नर धनि है जगत में, शिवपद लहें अनूप।।३७।।
करम सकल क्षय होत हैं, एक ध्यान परसाद।
ध्यान धारि उघरे[3] बहुत, लहि निजपद अहिलाद[4]।।३८।।
अमल अखंडित ज्ञान में, अविनासी अविकार।
सो लहिये निज ध्यान तैं जो त्रिभुवन में सार।।३९।।

---

१ वैभव २ आराधना करने से. ३ प्रकट. ४ ज्ञानानन्द, आल्हाद.

सवैया

गुण परिजाय को सुभाव धरि भयो द्रव्य,
गुण परिजाय भये द्रव्य के सुभाव ते।
परिजाय भाव करि व्यय, उतपाद भये,
ध्रुव सदा भयो सो तो द्रव्य के प्रभाव ते।।
व्यय, उतपाद, ध्रुव सत्ता ही में साधि आये,
सत्ता द्रव्य लक्षण है सहज लखाव ते।
याही अनुक्रम परिपाटी जानि लीजियतु,
पावे सुखधाम अभिराम निज दाव ते।।४०।।
सहज अनंतगुण परम धरम सो है,
ताही को धरैया एक राजतदरव है।
गुण को प्रभाव निज परिजाय[१] शकति ते,[२]
व्यापियो जितेक गुण आप के सरव[३] है।।
परम अनंतगुण परिजंत[४] साधक ऐसे,
जाने ज्ञानवान जाके कछु न गरव[५] है।
याही परकार उपयोग मांहि सार पद,
लखि-लखि लीजे जगि बड़ो यो परव[६] है।।४१।।
एक परदेश में अनंतगुण राजतु हैं,
एक गुण में शकति परजै[७] अनंत हैं।
वहै[८] परिजाय काज करे गुण गुण ही को,
ऐसो राज पावे सदा रहे जयवंत है।।
सुख को निधान यो विधान है अतीव भारी,
अविकारी देव जाको लखे सब संत है।
याही परकार शिव सारपद साधि-साधि,

---

१ पर्याय, २ शक्ति के द्वारा, ३ सब, ४ पर्यन्त, ५ अहंकार, ६ पर्व, धर्माराधन का समय
७ पर्याय, ८ वही

भये हैं अनंत सिद्ध शिवतिया कंत हैं।।४२।।
एक गुण सत्ता सो तो दरवि को लक्षण है,
सो ही गुण सत्ता ते अनंत भेद लया है।
एक सत वीरजि यो सामान्यविशेष रूप,
परिजाय भेद ते अनंत भेद भया है।।
ऐसी भेद भावना ते पावना अलख की है,
अलख लखावने ते भवरोग गया है।
भव अपहार[1] ही तैं शिवथान मांहि जाय,
परम अखंडित अनंत सिद्ध थया[2] है।।४३।।
चरित चखैया[3] ज्ञान स्वपद लखैया[4] महा
सम्यक्त्व प्रधान गुण सबै शुद्ध करे है।
दरसन देखि निरविकलप रस पिये,
परम अतीन्द्री[5] सुख भोग भाव धरे है।।
महिमानिधान भगवान शिवथान मांहि,
सासतो सदैव रहि भव में न परे है।
ऐसो निज रूप यो अनूप आप वणि रह्यो,
गहे जेही जीव काज तिन ही को सरे है।।४४।।
स्वपद लखावे निज अनुभौ को पावे
शिव–थान मांहि जावे; नहीं आवे भव–जाल में।
ज्ञानसुख गहे निज आनंद को लहे अविनासी
होय रहे एक चिदज्योति ख्याल में।।
ऐसो अविकारी गुणधारी देखि आप ही है
आपने सुभाव करि आप देखि हाल में।
तिहुंकाल मांहि संत जेतेक अनंत कहे,
ते–ते सब तिरे एक शुद्ध आप चाल में।।४५।।

१ अभाव, २ हुआ है, ३ चखने वाला, आस्वादक, ४ आत्मानुभव करने वाला
५ अतीन्द्रिय, इन्द्रियातीत

सहज ही बने ते आप पद पावना है,
ताके पावे को कहि कहाँ विषमताई है।
आप ही प्रकास करे कौन पै छिपायो जाय,
ताको नहीं जाने यह अचरजिताई[1] है।।
आप ही विमुख ह्वै के संशय में परे मूढ,
कहे गूढ कैसे लखे देत न दिखाई है।
ऐसी भ्रमबुद्धि को विकार तजि आप भजि,
अविनासी रिद्धिसिद्धि दाता सुखदाई है।।४६।।
देवन को देव ह्वै के काहे पर सेव करे,
टेव[2] अविनासी तेरी देखि आप ध्यान मे।
जाने भवबाधा को विकार सो विलाय जाय[3]
प्रगटे अखंड ज्योति आप निजज्ञान में।।
तामें थिर थाय मुख आतम लखाय आप,
मेटि पुन्य–पाप वे जिय सिव थान में।
शिवतिया भोग करि सासतो[4] सुथिर रहे,
देव अविनासी महापद निरवाण में।।४७।।
देव अविनासी सुखरासी सो अनादि ही को,
ज्ञान परकासी देख्यो एक ज्ञानभाव तैं।
अनुभौ अखंड भयो सहज आनंद लयो,
कृतकृत्य भयो एक आतमा लखाव तैं।
चिदज्योतिधारी अविकारी देव चिदानंद,
भयो परमातमा सो निज दरसाव तैं।
निरवाणनाथ जाकी संत सब सेवा करें,
ऐसो निज देख्यो निजभाव के प्रभाव तैं।।४८।।
अतुल अबाधित अखंड देव चिदानंद,

---

१ आश्चर्यकारी, २ वृत्ति, आदत, ३ विलीन हो जाता है, ४ शाश्वत, नित्य

सदा सुखकंद महा गुणवृंद धारी हैं।
स्वसंवेदज्ञान करि लीजिये लखाय ताहि,
अनुभौ अनूपम ह्वै दोष दुखहारी हैं।।
आप परिणाम ही तैं परम स्वपद भेंटि,
लहिये अमल पद आप अविकारी हैं।
सहज ही भावना तैं शिव सादि सिद्ध हूजे,
यहे काज कीजे महा यहै सीख सारी हैं।।४६।।
सुद्ध चिद ज्योति दुति दीपति[1] विराजमान,
परम अखंड पद धरें अविनासी है।
चिदानंद भूप की प्रदेशन में राजधानी,
परम अनूप परमातमा विलासी है।।
चेतन सरूप महा मुकति तिया को अंग,
ताके संग सेती सो ही सदा सुखरासी है।
निहचे स्वपद देखि श्रीगुरु बतावतु है,
अहो भवि जो तो निज आनंद उल्हासी है।।५०।।
गुण परजायन[2] द्रयै[3] ते दरवि[4] कह्यो,
द्रव्य द्रयगुण परजायन को व्यापे हैं।
द्रव्य परजाय द्रय[5] मिले आप सुख,
होय हैं अनंत ऐसे केवली आलापे[6] हैं।।
अर्थक्रियाकारक ये द्रये ते सधि आवे,
द्रव्य ही गुण परजै[7] को द्रव्यत्व ही थापे हैं।
ऐसी है अनंत महा महिमा द्रवत्व ही,
आतमा द्रवत्व करि आप ही में आपे हैं।।५१।।
सामान्य–विशेष रूप वस्तु ही में वस्तुत्व,
सो ही द्रव्य लिये सदा सामान्यविशेष हैं।

---

१ दीप्तिमान, प्रकाशमान, २ पर्यायों के, ढलने से, ४ द्रव्य, ५ द्रवित, ६ कहते हैं, ७ पर्याय को

सामान्य विशेष दोउ सब गुण मांहि सधे,
परजाय मांहि यातैं सधत अशेष[1] हैं।।
द्रवे द्रव्यसामान्य जु भाव द्रवे यों विशेष,
सामान्यविशेष सो तो गुण को अलेष[2] हैं।
परजाय परणवे यो ही है सामान्य ताको,
गुणन को परणवे यो ही जाको शेष हैं।।५२।।
सादृश्य स्वरूप सत्ता दोउ भेद सत्ता के,
ताहू में स्वरूपसत्ता भेद बहु कहे हैं।
द्रव्य गुण परजाय भेद तैं बखानी त्रिधा,
गुण सत्ता भेद तो अनंत भेद लहे हैं।।
दरसन है दृग की ज्ञान है सुज्ञान सत्ता,
ऐसे ही अनंत गुण सत्ता भेद चहे है।
परजाय सत्ता सो तो राखे परजाय को है,
ऐसे सत्ताभेद लखि ज्ञानी सुख गहे हैं।।५३।।
एक परमेय की प्रजाय[3] सो अनंतधा[4] है,
तातैं सब गुण योग्य करवे प्रमाण हैं।
परमेय[5] बिना परमाण जोग्य नाहिं हुते,
यातैं परमेय सब गुण में प्रधान हैं।।
याही परकार द्रव्य परजाय मांहि देखो,
याही तैं विशेष महा यो ही बलवान हैं।
याकी विधि जाने सो प्रमाणे आनंद को,
सब परमाण करि पावे सुखथान हैं।।५४।।
द्रव्य–गुण–पराजय जैसे ही के तैसे रहें,
ऐसो यो प्रभाव सो अगुरुलघु को कह्यो।।
बिना ही अगुरुलघु हलके कै भारी हुते,

१ सम्पूर्ण, २ परस्पर मिले हुए, ३ पर्याय, ४ अनन्त प्रकार, ५ प्रमेय.

यातैं नहीं जाने मरजाद पद ना लह्यो।।
यातैं वस्तु जथावत राखवे को कारण है,
ऐसो यो अखंड लखि संपुरषा[1] लह्यो।
याही के प्रसाद तीनों जथावत याही तैं,
याही को प्रताप जगि जैवंतो[2] वणि रह्यो।।५५।।
द्रव्य गुण परजाय स्वपद के राखवे को,
वीरज के बिना नहीं सामरथ्य रूप है।
वीरज अधार यह अनाकुल आनंद हू,
यातैं यह वीरज ही परम अनूप है।
वीरज के भये ये हू सब निहपन्न भये,
यातैं यह वीरज ही सबन को भूप है।।५६।।
एक परदेस में अनंत गुण राजतु हैं,
ऐसे ही असंख्य परदेस धारी जीव है।
दरव को सत्ता अरु आकृति प्रदेशन ते,
गुण परकाश है प्रदेश ते सदीव है।।
अर्थक्रियाकारक ये परणति ही तै है है,
ऐसी परणति ही के परदेश सीव[3] है।
गुण–परजाय जामें करत निवास सदा,
यातैं प्रदेशत्व गुण सबन को पीव[4] है।।५७।।
सबन को ज्ञाता ज्ञान लखत सरूप को है,
दरशन देखि उपजावत आनन्द को।
चारित चखैया चिदानन्द ही को वेदतु है,
रसास्वाद लेय पोषें महासुख कन्द को।।
अनुभौ अखंडरस वश पर्‌यो आतमा यो,

---

१ सम्यग्दृष्टि पुरुषों ने शुद्धात्मा को प्राप्त किया है, २ जयवन्त, ३ सीमा, ४ प्रिय, स्वामी

कहूं नहीं जाय दिढ राखे गुणवृन्द को।
रसिया सुर सरस रस के जे रसिया हैं,
रस ही सों भर्‌यो देखे देव चिदानंद को।।५८।।
चक्षु–अचक्षु गुण दरशन आतमा को,
प्रत्यक्ष ही दीसे ताहि कैसे के निवारिये[१]।
कुमति–कुश्रुत ये हू सारे जग जीवन के,
ज्ञेय ज्ञान करे कहु कैसे ताहि हारिये।
इन्द्रिन की क्रिया ताको परेरक[२] आतमा है,
मन–वच–काय वरतावे यो विचारिये।
सब ही को स्वामी अरु नामी जग मांहि यो ही,
मोक्ष जगि यो ही कहो ताहि कैसे हारिये।।५९।।
क्रोध–मान–माया–लोभ चारों को करैया यो,
विषैरस भोगी यो ही भव को भरैया[३] है।
यो ज्ञान कछु धारि अंतर सु आतमा ह्वै,
यो ही परमातमा ह्वै शिव को वरैया[४] है।।
यो ही गुणथान[५] अरु मारगणा[६] मांहि यो ही,
शुभाशुभ शुद्धपयोग को धरैया[७] है।
ज्ञानी औ अज्ञानी होय वरते सो ही है,
यो ही ऊँच–नीच विधि सब को करैया है।।६०।।
यो ही है असंजमी सुसंजम को धारी यो ही,
यो ही अणुव्रत–महाव्रत को धरैया है।
यो नट कला खेले नाटक बणावे यो ही,
यो ही बहु सांग[८] लाय सांग को करैया है।।
यो ही देव नारक जु तिरजंच मानव ह्वै,
यो ही गति चारि मांहि चिर को फिरैया[९] है।

---

१ दूर करें, २ प्रेरक, ३ भरने वाला, ४ वरण करने वाला, ८ स्वांग, नाटक, तमाशा,
९ भ्रमण करने वाला,

यो ही साधि साधन को ज्ञान नाव बैठ करि,
शुद्धभाव धारि भवसिंधु को तिरैया है।।६१।।
यो ही यो निगोद में अनंतकाल वसि आयो,
यो ही भयो थावर सु त्रस यो ही भयो है।
यो ही ज्ञान–ध्यान मांहि यो ही कवि चातुरी में,
चतुर ह्वै बैठो अरु यो ही सठ[1] थयो है।।
यो ही कला सीखि के भयो महा कलाधारी,
यो ही अविकारी अविकार जाको आयो है।
यो ही निरफंद कहूं फंद को करैया यो ही,
यो ही देव चिदानन्द ऐसे परणयो है।।६२।।

दोहा

यह (इस) अनादि संसार में, थे अनादि के जीव।
पर पद ममता में फहे[2], उपज्यो अहित सदीव[3]।।६३।।
ता कारण लखि गुरु कहें, धरम वचन विसतार।
ताहि भविक जन सरदहे[4], उतरे भवदधि पार।।६४।।
परम तत्त्व सरधा किये, समकित है है सार।
सो ही मूल है धरम को, गहि भवि ह्वै भवपार।।६५।।
देव धरम गुरु तत्त्व की, सरधा करि व्यवहार।
समकित यह शिव देतु है, परंपरा सुख धार।।६६।।
सहज धारि शिव साधिये, यो सद्गुरु उपदेस।
अविनासी पद पाइये, सकल मिटे भव–क्लेस।।६७।।
साधन मुक्ति सरूप को, नय प्रमाणमय जानि।
स्यादवाद को मूल यह, लखि साधकता आनि।।६८।।
गुण अनन्त निज रूप के, शकति अनन्त अपार।
भेद लखे भवि मुक्ति सो, शिवपद पावे सार।।६९।।

१ अज्ञानी, मूर्ख, २ फँसे, उलझे हुए, ३ सदा ही, ४ श्रद्धा करता है,

सवैया

साधि निज नैगम ते वर्तमान भाव करि,
संग्रह स्वरूप ते स्वरूप को गहीजिये।
गुणगुणीभेद व्यवहार ते सरूप साधि,
अलख अराधिके अखंड रस पीजिये।।
होय के सरल ऋजुसूत्र[1] ते स्वभाव लीजे,
'अहं' अस्मि'[2] शब्द साधि स्वसुख करीजिये।
अभिरूढ[3] आप में अनूप पद आप कीजे,
एवंभूत[4] आप पद आप में लखीजिये।।७०।।
स्वपद मनन करि मानिये स्वरूप आप,
भाव श्रुत धारिके स्वरूप को संभारिये[5]।
अवधि स्वरूप लखे पाइये अवधिज्ञान,
मनपरजे ते[6] मनज्ञान मांहि धारिये।।
केवल अखंड ज्ञान लोकालोक के प्रमाण,
सो ही है स्वभाव निज निहचे विचारिये।
प्रत्यक्ष परोक्ष परमान ते स्वरूप को,
सदा सुख साधि दुख–द्वंद को निवारिये।।७१।।
आप निज नाम ते अनेक पाप दूरि होत,
सोहं की संभार शिव सार सुख देतु है।
आकृति स्वरूप की सो थापना स्वरूप की है,
ज्ञानी उर ध्याय निज आनंद को लेतु है।
दरवि के देखे दुख–द्वंद सो विलाय जाय,
याही को विचार भवसिंधु ताको सेतु[7] है।।
केवल अखंड ज्ञान भाव निज आप को है,
लोकालोक भासिवे को निरमल खेतु[8] है।।७२।।

---

१ सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय, २ सोऽहं, ३ समभिरूढ नय, ४ एवंभूत नय, ५ सम्हालिये, आत्मानुभव कीजिए, ६ मनः पर्यय ज्ञान से, ७ पुल, ८ क्षेत्र (केवलज्ञान)

द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव आप ही को आप में जो,
लखे सोही ज्ञानी सुख पावत अपार है।
संज्ञा अरु संख्या सही लक्षण प्रयोजन को,
आप में लखावे वहे करे निरधार[1] है।।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
आप ही प्रमाण प्रमेय भाव धारक है,
आप षट्कारक ते जगत में सार है।
आप ही की महिमा अनंतधा[2] अनंतरूप,
आप ही स्वरूप लखि लहे भवपार है।।७३।।
एक चिदमूरति स्वभाव ही को करता है,
असंख्यात परदेशी गुण को निवासी है।
जीव परणाम क्रिया करवे को कारण है,
लोकालोक व्यापी ज्ञानभाव को विकासी है।।
आन सों[3] अतीत सदा सासतो विराजतु है,
देव चिदानंद जगि जोति प्रकासी है।
ऐसो निज आप जाको अनुभौ अखंड करे,
शिवतियानाथ होय रहे अविनासी है।।७४।।
शोभित है जीव सदा आन सों अतीत महा,
आश्रव–बंध–पुण्य–पाप सों रहित है।
सहज के संवर सों परको निवारतु है,
शुद्ध गुणधाम शिवभाव सों सहित है।।
ऐसी अवलोकनि में लोकके शिखर परि,[4]
सासतो विराजे होय जग में महतु[5] है।
शिव के सधैया जाको सुखराशि जानि–जानि,
अविनासी मानि–मानि जय–जय कहतु है।।७५।।

---

१ मुद्रित पाठ है–सुउधार; प्रतीति, निश्चय, २ अनन्त प्रकार, ३ अन्य, दूसरे से, ४ ऊपर, ५ महान्

दोहा

अचल अखंडित ज्ञानमय, आनंदघन गुणधाम।
अनुभौ ताको कीजिये, शिवपद ह्वै अभिराम।।७६।।

सवैया

सहज परकास[1] परदेश[2] का वणि रह्या,
देश ही देश में गुण अनंता।
सत अरु वस्तु बल अगुरु आदि दे,
सकल गुण मांहि लखि भेद संता।।
ज्ञान की जगनि में जोति की झलक है,
ताहि लखि और तजि[3] तंत–मंता[4]।
धारि निज ज्ञान अनुभौ करो सासतो,
पाय पद सही ह्वै मुकति कंता[5]।।७७।।
सहज ही ज्ञान में ज्ञेय दरसाय है,
वेदि है आप आनंद भारी।
लोक के सिखर परि सासते राजि हैं,
सिद्ध भगवान आनंदकारी।।
अमित अदभुत अति अमल गुण को लिये,
शुद्ध निज आप सब करम टारी।
देह में देव परमातमा सिद्ध सौं,
तास अनुभौ करो दुखहारी।।७८।।
सहज आनंद का कंद निज आप है,
ताप भव–रहित पद आप बेवे[6]।
आप के भाव का आप करता सही,

---

१ प्रकाश, २ प्रदेश, ३ त्याग कर, ४ तन्त्र–मन्त्र, ५ स्वामी, ६ उत्पन्न करता है

आप चिद करम को आप सेवे।।
आप परिणाम करि आप को साधि है,
आप आनंद को आप लेवें।
आप तैं आप को आप थिर थापि है,
आप अधिकार को धारि[1] टेवे[2]
आप महिमा महा आप की आप में,
आप ही आप को आप देवे।।७६।।
आप अधिकार जानि सार सरवगि[3] कहे,
ध्यान में धारि मुनिराज ध्यावें।
सकति[4] परिपूरि[5] दुख दूरि हैं
जास ते सहज के भाव आनंद पावे।।
अतुल निज बोध की धारिके धारणा,
सुविधिसागर जी महाराज
सहज चिदजोति में लौ लगावे।
और करतूति का खेद को ना करे,
आप के सहज घरि आप आवे।।८०।।
सकल संसार का रूप दुख भार है,
ताहि तजि आप का रूप दरसे।
मोह की गहलि ते[6] पार निज को कह्या,
त्यागि पर सहज आनंद बरसे।।
आप का भाव दरसाव करि आप में,
जोति को जानि भव्य परम हरसे[7]।
शुद्ध चिदरूप अनुभौ करे सासतो,
परमपद[8] पाय शिवथान[9] परसे[10]।।८१।।
सकल संसार पर मांहि आपा[11] धरे,

---

१ धारण कर, २ दृढ़ करे, ३ सर्वज्ञ, ४ शक्ति, ५ भरपूर, पूर्ण, ६ मदहोशी, गहल से, ७ प्रसन्न हो, परमात्म पद, ६ मुक्तिधाम, १० स्पर्श करे, ११ आपापन

आप परिणाम को नाहिं धारे।
सहज का भाव है खेद जामें नहीं,
आप आनंद को ना संभारे।।
कहे गुरु बैन जो चैन की चाहि है,
राग अरु दोषको क्यों न टारे।
त्यागि पर थान अमलान आपा[१] गहे,
ज्ञानपद पाय शिव में सिधारे।।८२।।
मूठि कपि[२] की कहो कौन ने पकरी,
पाडली को[३] जल कौन पीवे।
कांच के महल में श्वान[४] कहा दूसरो,
कूप में सिंह गरजे नहीं वे।।
जेवरी[५] में कहूं नाग नहीं दरसि हैं,
नलिनि[६] सूवा[७] न पकर्‌यो कहीं वे।
भूलिके भाव को तुरत जो मेटि दे,
पावके[८] अमर पद सदा जीवे।।८३।।
गमन की बात यह दूरि ह्वै तो कहूं,
दुख ह्वै तो कहूं सुखी थावो[९]।
खेद ह्वै तो कहूं नेक विश्राम ल्यो[१०],
अलाभ ह्वै तो कहूं लाभ पावो।।
बंध ह्वै तो कहूं मुकति को पद लहो,
आप में कौन है द्वैत दावो[११]।
सहज को भाव वो सदा जो वणि रह्यो,
ताहि लखि और को मति उपावो[१२]।।८४।।
देव चिदरूप अनूप अनादि है,

---

१ अपनापन, २ बन्दर की मूठ, ३ मृगमरीचिका, ४ कुत्ता, ५ रस्सी, ६ तोता पकड़ने की पुंगेरी, ७ तोता, ८ प्राप्त कर, ९ हो जाओ, १० विश्राम लो, ११ भिन्नता करो, १२ उपाय मत करो

देशना गुरु कहे जानि प्यारे।
अतुल आंनद में ज्ञान पद आप है,
ताप भव को नहीं है लगारे।।
आप आनंद के कंद को भूलिके,
भमत जग मांहि यह जंतु सारे।
आप की लखनि करि आप ही देखिं हैं,
आप परमातमा शिवसुखवारे[1]।।८५।।
अलख सब ही कहें लख न कोई कहे,
आप निज ज्ञान तैं संत पावें।
जहां मंत नहीं तंत मुद्रा नहीं भासि[2] है,
धारणा की कहो को चलावे।।
वेद अरु भेद पर खेद कोऊ नहीं,
सहज आनंद ही को लखावे।
आप अनुभौ सुधा आप ही पीय के,
आप को आप लहि अमर थावे[3]।।८६।।

सवैया

यो ही करे करम को यो ही धरे धरम को,
यो ही मिश्रभाव सोंज[4] करता कहायो है।
यो ही शुभलेश्या धरि सुरग पधार्‌यो आप,
यो ही महापाप बांधि नरकि सिधायो है।।
यो ही कहूं पातरि[5] नाचत ह्वै नेक फिर्‌यो,
यो ही जसधारी ढोल जसई[6] बजायो है।
या ही परकार जग जीव यो करत काम,
औसर[7] में साधो शिव श्रीगुरु बतायो है।।८७।।

---

१ मुद्रित पाठ है—नाजूबारे, २ भासित होती है, ३ होता है, ४ मुद्रित पाठ है—नौजु, ५ वेश्या, ६ नगाड़ा, ७ अवसर

अडिल्ल

तुम देवन के देव कही भव–दुख भरो।
सहजभाव उर आनि राज शिव को करो।।
जहां महाथिर होय परम सुख कीजिये।
चिदानंद आनंद पाय चिर जीजिये।।८८।।
पर परणति को धारि विपति भव की भरी।
सहजभाव को धारि शुद्धता ना करी ।।
अब करिके निजभाव अमर आपा[1] करो।
अविनासी आनंद परम सुख को करो।।८६।।
सकल जगत के नाथ सेव[2] क्यों पर करो।
अमल आप पद पाय ताप भव परिहरो।।
अतुल अनूपम अलख अखंडित जानिये।
परमातम पद देखि परम सुख मानिये।।६०।।
सही जानि सुखकंद द्वंद दुख हारिये[3]।
चिनमय[4] चेतन रूप आप उर धारिये।।
पर परणति को प्रेम अबै तज दीजिये।
परम अनाकुल सदा सहज रस पीजिये।।६१।।

छप्पय

राहज आप उर आनि अमल पद अनुभव कीजे।
ज्योति स्वरूप अनूप परम लहि निजरस पीजे।।
अतुल अखंडित अचल अमितपद[5] है अविनासी।
अलख एक आनंद कंद है नित सुखरासी।।
सो ही लखाय थिर थाय के उल्हसि–उल्हसि[6] आनंद करे।
कहि 'दीपचंद' गुणवृंद लहि शिवतिया[7] के सुख सो वरे।।६२।।

---

१ आप, आत्मा, २ सेवा, ३ दूर कीजिए, ४ चिन्मय, चैतन्य, ५ असीम, ६ बहुत उल्लसित हो कर, ७ मोक्ष–लक्ष्मी

दोहा

ग्रंथ स्वरूपानंद को, लीजे अरथ विचारि।
सरधा करि शिवपद लहे, भवदुख दूरि निवारि।।६३।।
संवत सतरा सौ सही, अरु इकानवे जानि।
महा[1] मास सुदि पंचमी, किया सुख की खानि।।६४।।
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
देव परम गुरु उर धरों, देत स्वरूपानंद।
'दीप' परम पद को लहे, महा सहज सुख कंद।।६५।।

इति

उपदेश सिद्धान्तरत्न

दोहा

परम पुरुष परमातमा, गुण अनंत के थान।
चिदानंद आनंदमय, नमो देव भगवान।।१।।
अनुपम आतम पद लख, धरे महा निज ज्ञान'।
परम पुरूष पद पाइ हैं, अजर अमर लहि थान।।२।।
विविध भाव धरि करम के, नाटत है जगजीव।
भेद ज्ञान धरि संतजन, सुखिया होंहि सदीव।।३।।

सवैया

करम के उदै केउ[2] देव परजाय पावें,
भोग के विलास जहां करत अनूप हैं।
महा पुण्य उदे[3] केउ नर परजाय लहें,
अति परधान[4] बडे होइ जग भूप हैं।।
केउ गति हीन दुखी भये डोलत हैं,
राग–दोष धारि परें भवकूप हैं।

---

१ माघ माह, २ कई, कितने, ३ उदय में, ४ मुखिया,

पुण्यपाप भाव यहै[1] हेय करि जानत है,
तेई ज्ञानवंत जीव पावें निजरूप हैं।।४।।

दोहा

अतुल अविद्या वसि परे, धरें न आतमज्ञान।
पर परणति में पगि रहे कैसे ह्वै निरवान।।५।।

सवैया

मानि पर आपो प्रेम करत शरीर सेती,
कामिनी कनक मांहि करे मोह भावना।
लोक लाज लागि मूढ आप जे अकाज करे,
जाने नहीं जे–जे दुख परगति पावना।।
परिवार प्यार करि बांधे भुअभार महा,
बिनु ही विवेक करे काल का गमावना।
कहे गुरु ग्यान नाव बैठि भवसिंधु तरि,
शिवथान पाय सदा अचल रहावना।।६।।
करम अनेक बांधे चरम शरीर काजि,
धरम अनूप सुखदाई नाहिं करे है।
मोह की मरोर ते न स्वपर विचार पावे,
दुंद[2] ही में ध्यावे यातें भव दुख भरे है।।
आप को प्रताप जाको करे नहीं परकाज,
सोई तो निगोद मांहि कैसे अनुसरे है।
कहे 'दीपचंद' गुणवृंदधारी चिदानंद,
आप पद जानि अविनासी पद धरे है।।७।।
मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार यह

---

१ यह, २ मुद्रित पाठ है–धंध ही.

मेरो मेरो माने जाकी माननि[1] धरतु है।
जग में अनेक भाव जिन को जनैया होत,
परम अनूप आप जानिन करतु है।।
मोह की अलट[2] ते अज्ञान भयो डोलत है,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
चेतना प्रकाश निज जान्यो न परतु है।
अहंकार आन को किये तैं कछु सिद्धि नाहिं,
आप अहंकार[3] किये कारिज सरतु है।।८।।
सहज संभारि कहा परि मांहि फंसि रह्यो,
जे जे[4] पर[5] माने[6] तेते[7] सब दुखदाई हैं।
विनासी जड़ महा मलिन अतीव बने,
तिन ही की रीति तोको अति ही सुहाई हैं।।
समझि के देखि सुखदाई भाव भूलतु हैं,
दुखदाई माने कहु[8] होत न बड़ाई हैं।
अरु भयो अनादि को है अजहूं[9] न आवे लाज,
काज सुध[10] किये विनु कोई न सहाई हैं।।६।।
लौकिक के काजि महा लाखन खरच करे,
उद्यम अनेक धरे अगनि[11] लगाय के।
महासुख दायक विधायक परमपद,
ऐसो निजधरम न देखे दरसाय के।
एक बार कह्यो तू हजार बार मेरी मानि,
देह को सनेह किये रुले दुख पाय के।।
आतमीक हित यातैं करणो[12] तुरत तोको,[13]
और परपंच झूठे करे क्यों उपाय के।।१०।।
तन–धन–मन–ज्ञान च्यार्यों क्यो छिनाय[14] लेत,

---

१ गर्व, अभिमान, २ विपरीतता, ३ पर में अपनापन, अहं बुद्धि, ४ जिन–जिन को, ५ पर पदार्थ, ६ माना है, ७ वे सब, ८ कहो, ६ आज भी, १० शुद्ध, ११ आग, १२ कर्तव्य, १३ तुझे, १४ छीनना, छुड़ाना

तासो धरे हेत[१] कहे मेरी अति प्यारी है।
आभूषण आदि वस्तु बहुते[२] मंगाय देत,
विषैसुख हेतु[३] ही ते हिये मांहि धारी है।।
महा मोह फंद ताको मंद करे चंदमुखी,
ताको दास होय[४] मूढ करे अति भारी है।
आपदा दुवार[५] जाको सार जानि जानि रमे,
भवदुखकारी ताहि कहे मेरी नारी है।।११।।
पर परिणति सेती[६] प्रेम दे अनादि ही को,
रमे महामूढ यह अति रति मानि के।
कुमति सखी है जाकी ताको फँास लिये डोले,
गति–गति मांहि महा आप पद जानि के।।
सहज के पाये बिनु राग–दोष ऐंचतु[७] है,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
पावे न स्वभाव यों अज्ञान भाव ठानि के।
कहे 'दीपचंद' चिदानंदराजा सुखी होइ,
निज परिणति तिया घर बैठे आनि के।।१२।।
चिदपरणति नारी है अनंत सुखकारी,
ताही को बिसारी[८] ताते भयो भववासी है।
जाको धारि वानि[९] तातैं आप के संभारे निधि,
आतमीक आप केरी[१०] महा अविनासी है।
भोगवे अखंड सुख सदा शिवथान मांहि,
महिमा अपार निज आनंद विलासी है।
कहे 'दीपचंद' सुखकंद ऐसे सुखी होय,
और न उपाय कोटि[११] रहे जो उदासी है।।१३।।

---

१ प्रेम, २ बहुत, ३ लिए, ४ मुद्रित पाठ है–दासातन, ५ द्वार, ६ से, ७ खींचते हैं, ८ भुला दिया है, ९ स्वरूप, मुद्रित पाठ है–"धारि आनि", १० की, ११ प्रकार

दोहा

सकल ग्रंथ को मूल यह, अनुभव करिये आप।
आतम आनंद ऊपजे, मिटे महा भव–ताप।।१४।।

सवैया

करि करतूति केउ करम की चेतना में,
व्यापकता धारि ह्वै हैं करता करम के।
शुभ वा अशुभ जाको आप के सुफल होत,
सुख–दुख मानि भेद लहें न धरम के।।
ज्ञान शुद्ध चेतना में करम–करम फल,
दोऊ नहीं दीसे भाव निज ही शरम[१] के।
कहे 'दीपचंद' ऐसे भेद जानि चेतना के,
चेतना को जाने पद पावत परम[२] के।।१५।।
वेद के पढ़े तैं कहा स्मृति हू पढे कहा,
पुराण पढ़े ते कहा निज तत्त्व पायो है।
बहु ग्रंथ पढ़े कहा जाने न स्वरूप जो तो,
बहोत[३] क्रिया के किये देवलोक थावे[४] है।।
तप के तपे हू ताप[५] होत है शरीर ही को,
चेतना–निधान कहूं हाथ नहीं आवे है।
कहे 'दीपचंद' सुखकंद परवेस[६] किये,
अमर अखंड रूप आतमा कहावे है।।१६।।
वेद निरवेद[७] अरु पढे हूं अपढ महा,
ग्रंथन को अरथ सो हू[८] वृथा सब जानिये।
भले–भले काज जग करिवो अकाज जानि,

---

१ सुख, आनन्द, २ परमात्मा, ३ बहुत, ४ पाते हैं, स्थित होते हैं, ५ संताप, पीड़ा, ६ प्रवेश, ७ स्मृति, ८ भी,

कथा को कथन सोहू विकथा बखानिये।
तीरथ करत बहु भेष को बणाये कहा,
वरत–विधान कहा क्रियाकांड ठानिये।
चिदानंद देव जाको अनुभौ न होय जोलों,
तोलों सब करवो अकरवो ही मानिये।।१७।।
सुरतरु चिंतामणि कामधेनु पाये कहा,
नौनिधान[१] पाये कछु तृष्णा न मिटावे है।
सुर हू की संपति में बढ़े भोग भावना है,
राग के बढावना में थिरता न पावे है।।
करम के कारिज में कृतकृत्य कैसे होई,
यातैं निज मांहि ज्ञानी मन को लगावे है।
पूज्य धन्य उत्तम परमपद धारी सोही,
चिदानंद देव को अनंतसुख पावे है।।१८।।
महाभेष धारिके अलेख[२] को न पावे भेद,
तप–ताप तपे न प्रताप आप लहे है।
आन ही की आरति[३] है ध्यान न स्वरूप धरे,
पर ही की मानि में न जानि निज गहे है।।
धन ही को ध्यावे न लखावे चिद लिखमी[४] को,
भाव न विराग एक राग ही में फहे[५] है।
ऐसे है अनादि के अज्ञानी जग मांहि जो तो,
निज ओर है तो अविनासी होय रहे है।।१९।।
परपद धारणा निरंतर लगी ही रहे,
आप पद केरी[६] नाहिं करत संभार है।
देह को सनेह धारि चाहे धन–कामिनी को,

१ नौ निधियाँ, २ अलक्ष्य, परमात्मा, ३ चिन्ता, ४ चैतन्य लक्ष्मी, ५ फँसे हुए, ६ की (निजस्वभाव की)।

राग–दोष भाव करि बांधे भवभार है।।
इंद्रिन के भोग सेती मन में उमाह[१] धरे,
अहंकार भाव तैं न पावे भवपार है।
ऐसो तो अनादि को अज्ञानी जग मांहि डोले,
आप पद जाने सो तो लहे शिवसार है।।२०।।
करम कलोलन की उठत झकोर[२] भारी,
यातैं अविकारी को न करत उपाव है।
कहुं क्रोध करे कहुं महा अभिमान धरे,
कहुं माया पगि लग्यो लोभ दरयाव[३] है।।
कहुं कामवशि चाहि करे मित कामिनी की,
कहुं मोह धारणा तैं होत मिथ्या भाव है।
ऐसो तो अनादि लीनो स्वपर पिछानि अब,
सहज समाधि में स्वरूप दरसाव है।।२१।।
नौ निधान आदि देके चौदह रतन त्यागे,
छियानवे हजार नारि छांडि दीनी छिन में।
छहों खण्ड की विभूति त्यागि के विराग लियो,
ममता नहीं कीनी भूलि[४] कहूं एक तिन में।।
विश्व को चरित्र विनासीक लख्यो मन मांहि,
अविनाशी आप जान्यो जग्यो ज्ञान तिन में।
याही जग मांहि ऐसे चक्रवर्ती है अनन्ते,
विभौ[५] तजि काज कियो तू वराक[६] किन में।।२२।।
कनक[७] तुरंग गज चामर अनेक रथ,
मंदर अनूप महा रूपवन्त नारी है।
सिंहासन आभूषण देव आप सेवा करें,
दीसे जग मांहि जाको पुण्य अति भारी है।।

---

१ उमंग, २ कर्म का तीव्र उदय, ३ समुद्र ४ मुद्रित पाठ है–मुलि (मूलि), ५ वैभव, ६ बेचारा, दीन–हीन, ७ स्वर्ण

ऐसो है समाज राज विनासीक जानि तज्यो,
साध्यो शिव आप पद पायो अविकारी है।
अब तू विचारि निज निधि को संभारि सही,
एक बार कह्यो सो ही यो हजारबारी है।।२३।।
विविध अनेक भेद लिये महा भासतु है
पुद्गलदरब रति तामें नाहिं कीजिये।
चेतना चमतकार समैसार रूप[1] आप,
चिदानन्द देव जामें सदा थिर हूजिये।।
पायो यह दाव[2] अब कीजिये लखाव आप,
लहिये अनन्त सुख सुधारस पीजिये।
दरसन ज्ञान आदि गुण हैं अनंत जाके,
ऐसो परमातमा स्वभाव गहि लीजिये।।२४।।
राजकथा विषै भोग की रति कनकवश[3]
केउ धनधान पशु पालन करतु हैं।
केउ अन्य सेवा मंत्र औषध अनेक विधि,
केउ सुर नर मनरंजना धरतु हैं।
केउ घर चिंता में न चिंता क्षण एक मांहि,
ऐसे समै जाहि तेई भौदुख[4] भरतु हैं।
जग में बहुत ऐसे पावत स्वरूप को जे,
तेई जन केउ शिवतिया को वरतु हैं।।२५।।
करम संजोग सेती धरि के विभाव नाट्यो,
परजाय धरि–धरि पर ही में परयो है।
अहं–ममकार करि भव–भव बांध्यो अति,
राग–दोष भावन में दौरि–दौरि लग्यो है।।
ज्ञानमई सार सो विकार रूप भयो यह,

१ शुद्धात्मा स्वरूप, २ अवसर, ३ मुद्रित पाठ है–कनकनग, ४ भव–दुःख,

विषय ठगोरी[1] डारि महामोह ठग्यो है।
तजि के उपाधि अब सहज समाधि धारि,
हिये में अनूप जो स्वरूप ज्ञान जग्यो है।।२६।।
गति–गति मांहि पर आप मानि राग धरे,
आप पुण्य–पाप ठानि भयो भववासी है।
चेतना निधान अमलान है अखंड रूप,
परम अनूप न पिछाने अविनासी है।।
ऐसी परभावना तू करत अनादि आयो,
अब आप पद जानि महासुखरासी है।
देवन को देव तू ही आन सेव कहा करे,
नैक निज ओर देखे सुख को विलासी है।।२७।।
अहं नर अहं देव अहं धरे पर टेव,
अहं अभिमान यो अनादि धरि आयो है।
अहंकार भाव तैं न आप को लखाव कियो,
पर ही में आपो मानि महादुख पायो है।।
कहुं भोग कहुं रोग कहुं सोग[2] है वियोग,
राग–दोष मई उपयोग अपनायो है।
धरम अनंतगुणधारी अब आतमा को,
अनुभौ अखंड करि श्रीगुरु दिखायो है।।२८।।
करिके विभाव भवभांवरि[3] अनेक दीनी,
आनंद को सिंधु चिदांनद नहीं जान्यो है।
करम कलंक पंक कोउ नहीं जहां कहे,
सदा अविनासी को लखाव नही आन्यो है।।
गुणन को धाम अभिराम है अनूप महा,
ऐसो पद त्यागि परभाव उर ठान्यो है।

---

१ ठगने वाली, २ शोक, चिन्ता, ३ भव–भ्रमण, फेरे,

भूलि तैं अनादि दुख पाये सो तो निवरी[1] है,
सहज संभारि अब श्रीगुरु बखान्यो है।।२६।।
आतम करम संधि सूक्षम अनादि मिली,
जामें अति पैनी बुद्धि छैनी महा मारी है।
शुद्ध चिदज्योति में स्वरूप को सथाप्यो[2] यातैं,
स्वपर की दशा सब लखी न्यारी–न्यारी है।
ज्ञायक प्रभा में निज चेतना प्रभुत्व जान्यो,
अविनासी आनंद अनूप अविकारी है।
कृतकृत्य जहां कछु फेरि नहीं करणो है,
सासता पद में निधि आपकी संभारी है।।३०।।
करी तैं[3] अनादि क्रिया पायो न स्वरूप भेद,
परभाव मांहि न है सहज की धारणा।
आप को स्वभाव वण्यो महा शुद्ध चेतना में,
केवल स्वरूप लखि करि के संभारणा[4]।।
सुपदद्दशा[5] के लखें सुगम स्वरूप आप,
ऐसा तो भला देखि समझि विचारणा।
आनंदस्वरूप ही में पर ओर कहा देखे,
आप ओर आप देखि होय ज्यों उघारणा[6]।।३१।।
तू ही चिनमूरति अनूप आप चिदानंद,
तू ही सुखकंद कहा करे पर भावना।
तेरे ही स्वरूप में अनंतगुण राजतु हैं,
जिन को संभारि बढ़े तेरी ही प्रभावना।।
तू ही पर भावन में राखि के अनादि दुखी,
भयो जगि डोले संकलेश जहां पावना।

---

१ बीत चुके, २ स्थापित किया, ३ तुमने की है, ४ सम्हाल, स्वरूप की सावधानी, ५ कैवल्य, ६ पूर्ण रूप से प्रकट करना, उघाड़ना,

नैक[1] निज ओर देखे शिवपुरीराज पावे,
आनंद में वेदि–वेदि[2] सासता[3] रहावना।।३२।।
सहज बिसार्‌यो तैं संभार्‌यो परपद यातैं,
पायो जगजाल में अनंत दुख भारी है।।
आजु सुखदायक स्वरूप को न भेद पायो,
अति ही अज्ञानी लागे परतीति[4] प्यारी है।।
परम अखंड पद करि तू संभार जाकी,
तेरो है सही[5] सो सदा पद अविकारी है।
कहे 'दीपचंद' गुणवृंदधारी चिदानंद,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
सो ही सुखकंद लखे शिव अधिकारी है।।३३।।

दोहा

विविध रीति विपरीति हैं, याही समै[6] के मांहि।
धरम रीति विपरीत कूं, मूरख जानत नांहि।।३४।।

सवैया

केऊ तो कुदेव माने देव को न भेद जाने,
केऊ शठ कुगुरु को गुरु मानि सेवे हैं।
हिंसा में धरम केऊ मूढ जन मानतु हैं,
धरम की रीति–विधि मूल नहीं बैठे हैं।
केऊ[7] राति[8] पूजा करि प्राणिनि को नाश करें,
अतुल असंख्य पाप दया बिनु लेवे हैं।।
केऊ मूढ लागि मूढ[9] अबै ही न जिनबिंब,
सेवे बार–बार लागे पक्ष करि केवे[10] हैं।।३५।।
सुत परिवार सों सनेह ठानि बार–बार,

---

१ तनिक, थोड़ा, २ बारम्बार आत्मानुभव कर, ३ अविनाशी, नित्य, ४ श्रद्धा, ५ सम्यक, ६ पंचम काल, ७ कुछ लोग, ८ रात्रि में, ९ देवमूढ़ता के लिए, १० कहते हैं

खरचे हजार मनि[1] धरि के उमाह[2] सों।
धरम के हेत[3] नेक खरच जो वणि आवे,
सकुचे[4] विशेष, धन खोय याही राह सों।।
जाय जिन मंदिर में बाजरो[5] चढावे मूढ़,
आप घर मांहि जीमे[6] चावल सराह सों[7]।
देखो विपरीत याही समै मांहि ऐसी रीति,
चोर ही को साह कहे कहे चोर साह सों[8]।।३६।।
गुणथान तेरह में केवलप्रकाश भयो,
तहां इन्द्र पूजा करे आप भगवान की।
तीसरे थड़े पै खड़ो दूरि भगवानजी सों,
चढ़ावे दरव वसु[9] कला ज्ञान की।।
धरमसंग्रहजी में कह्यो उपदेश यहै,
तातैं जिनप्रतिमा भी जिन ही समान की।
यातैं जिनबिम्ब पाय लेप न लाइयतु,
लेप जु लगाये ताकी बुद्धि है अज्ञान की।।३७।।

दोहा

वीतराग परकरण[10] में, सभी सराग न होय।
जैसो करि जहां मानिये, तैसी विधि अवलोय।।३८।।

सवैया

साधरमी निरधन देखि के चुरावे मन,
धरम को हेत कछु हिये नहीं आवे है।
सुत परिवार तिया इन सों लग्यो है जिया,

१ मन में, २ उमंग पूर्वक, ३ लिए, ४ संकोच करता है, ५ बाजरा, ६ मुद्रित पाठ "जीवे" है, जीमता है, खाता है, ७ सराहना पूर्वक, ८ साहुकार से, ९ आठ, १० प्रकरण में

इन ही के काज मूढ़ लाखन[1] लगावे है।।
नरक को बंध करे हिये में हरख धरे,
जनम सफल मानि–मानि के उम्हावे[2] है।
नेक हित किये भवसागर को पार होत,
धरम को हित ऐसों श्रीगुरु बतावे हैं।।३९।।

दोहा

क्रोडों[3] खरचे पाप को, कौड़ी धरम न लाय।
सो पापी पग नरक को, आगे–आगे जाय।।४०।।
मान बड़ाई कारणे, खरचे लाख, हजार।
धरम अरथि कोड़ी गये, रोवत करे पुकार।।४१।।
करम करत हैं पाप के, बार–बार मन लाय।
धरम सनेही मित्र की, नैक न करे सहाय।।४२।।
करन कामिनी सों करे जैसी हित अधिकाइ।
तैसो हित नहि धरम सों यातैं दुरगति थाइ।।४३।।
एक सुत ब्याह काजि लावत है हजारों धन,
कहे हम धन्य आजि शुभ घरी पाई है।
समरथ भये ते सब धन को छिनाय लेत,
कुगति को हेतु यासों कहे सुखदाई है।।
देशना धरम की दे दोऊ लोक हित ठाने,
तिन को न माने मूढ़ लगी अधिकाई है।
माया भिखारी महा कर्म ही को अधिकारी,
करे न धरम बूझि भौथिति[5] बढ़ाई है।।४४।।
कामिनी को कनक[6] के आभूषन करि–करि,
करे महा राजी जाके विषैं मति लागी है।

---

१ लाखों रुपये, २ उमंग, हर्ष, ३ करोड़ों, ४ कर्ज लेता है, ५ संसार की स्थिति, ६ स्वर्ण.

रहसि[1] जिनेन्द्रजी के धरम को जाने नाहिं,
मान ही बड़ाई काजि लछमी को त्यागी है।
विधि न धरम जाने गुण को न माने मूढ,
आज्ञा भंग क्रिया जासो प्रीति अति पागी है।
आतमीक रुचि करे मारग प्रभाव तासों,
करे न सनेह शठ बड़ो ही अभागी है।।४५।।
गुण को ग्रहण किये गुण बढवारी होई,
गुण बिन माने गुणहानि ही बखानिये।
गुणी जन होइ सो तो गुण को ही चाहतु है,
दुष्ट चाहे औगुण को ताको धिक मानिये।।
स्तन[2] में क्षीर तजि पीवत रुधिर जोंक,
ऐसो है स्वभाव जाको कैसे भलो जानिये।
यातैं गुणग्राही होइ तजि दीजे दुष्ट वाणि,
गुण को ही मानि–मानि धरम को ठानिये।।४६।।
धरम की देशना ते गुण देइ सज्जन को,
दीनन को धन–मन–धरम में लावे है।
चेतन की चरचा चित में सुहावे जाको,
मारग प्रभाव जिनराजजी को भावे है।।
अति ही उदार उर अध्यातम भावना है,
स्यादवाद भेद लिए ग्रंथ को बणावे है।
ऐसो गुणवान देखि सजन हरष धरे,
दुर्जन के हिये हित नैक हू न आवे है।।४७।।
धन ही को सार जानि गुण की निमानि[3] करे,
मोह सेती[4] मान धरे चाह है बड़ाई की।

---

१ रहस्य, मर्म, २ थन, २ निरादर, अवमानना, ३ से, के द्वारा

नारी सुत काजि[1] झूठ खरचि हजारों डारे,
चाकरी न करे कहुं धरम के भाई की।।
साधरमी धनहीन देखि के करावे सेवा,
अनादर राखे राति नहीं अधिकाई की।
माया की मरोर तैं न धरम को भेद पावें,
बिना विधि जाने रीति मिटे कैसे काई[2] की।।४८।।
साता सुखकारी यहै मोह की कुटिल नारी,
ताको जानि प्यारी ताके मद को करतु है।
धरम भुलावे अति करम लगावे भारी,
ऐसी साता हेत लच्छी घर में धरतु है।।
यह लोक चिंता परलोक में कुगति करे,
कहे मेरो यासों सब कारज सरतु है।
धरम के हेत लाई धन की सुगति करे,
धरम बढावे शिवतिय के चरतु है[3]।।४६।।
बार–बार कहै कहा तू ही या विचारि बात,
लछमी जगत में न थिर कहुं रही है।
जाको करि मद अर फेरि क्यों करम बांधे,
धरम के हेत लाये सुखदाई कही है।।
ऐसी दुखदायनि को कीजिये सहाय निज,
यातैं और लाभ कहा ढूंढ़ि देखि मही[4] है।।
साधरमी दुख मेटि धरम के मग लाय,
सात खेत[5] वाहें[6] सुख पावें जीव सही है।।५०।।
दस प्राण हू ते प्यारो धन है जगत मांहि,
महा हित होइ जहां धनको लगावे है।

१ के लिए, २ पानी के ऊपर जमने वाली काई, मोह, ३ आचरण करता है, ४ जगत, पृथ्वी, ५ सात क्षेत्रः जिनपूजा, मन्दिर–प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, सत्पात्रों को दान देना, साधर्मियों को दान, दुःखी जीवों को दान, कुल–परिवार वालों को दान, ६ बोते हैं,

तिया को तो धन सौंपे सुत को सब घर,
धरम में लालि–पालि[1] नेक हू न भावे है।।
लौकिक बड़ाई काजि खरचे हजारों धन,
चाह है बड़ाई की न धरम सुहावे है।
मूढ़न को मूढ़ महा रूढ़ि ही में विधि जानें,
सांच[2] न पिछाने कहो कैसे सुख पावे है।।५१।।
माया की मरोर ही तैं टेढ़ो–टेढ़ो पांव धरे,
गरव को खारि[3] नहीं नरमी गहतु है।
विनै[4] को न भेद जाने विधि ना पिछाने मूढ़,
अरुझ्यो बड़ाई में न धरम लहतु है।
चेतना निधान को विधान जिन सेती,
पावे तन हूं सो ईर्ष्या अज्ञानी यो महतु है।
रोजगारी करके समीप राख्यो चाहे आप,
याहू तैं अधिक बड़ो पाप को कहतु है।।५२।।
गुणवंत देखि अति उठि ठाड़ो होइ आप,
सनमुख जाय सिंहासन परि धारे है।
सेवा अति करे अरु दास तन धरे महा
विनै रूप बैन भक्तिभाव को बढारे[5] है।।
प्रभुता जनावे जगि महिमा बढावे जाकी,
चाहि जिय में[6] अंग सेवा को संभारे है।
भक्ति अंग ऐसो कोउ करे पुण्यकारणि,
जो पुण्य कोउ पावे अरु दुख–दोष टारे है।५३
प्रति परिपूरण तैं रोम–रोम हरषित ह्वै,
चित चाहे बार–बार पेम[7] रस भर्‌यो है।

---

१ लालन–पालन, २ सत्यार्थ, वस्तु–स्वरूप, ३ तीव्रता, ४ विनय, ५ उलझा हुआ
४ बढ़ाने वाले, ५ मुद्रित पाठ है–चाहिजि मैं असे, ६ मुद्रित पाठ 'येम' रस

अंतर में लगनि अतीव धरे धारणा सो
महा अनुराग भाव ताही मांहि धर्‍यो है।।
जहां–जहां जाको संग तहां–तहां रंग,
एक रस–रीति विपरीति भाव हर्‍यो है।
ऐसो बहु मान अंग विनै का बखान्यो सुध
ज्ञानवान जीव हित जानि यह कर्‍यो है।।५४।।
गुण को बखानि जाके जस को बढावे महा,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
जाकी गुण महिमा दिढावे बार–बार है।
जाही को करत अति गुणवान ज्ञानवान,
कथन विशेष जाको करे विसतार है।
रहि कै निसंक नाही बंक[1] हू नमन मांहि,
करत अतीव थुति हरष अपार है।
गुणन को वरणन तीजो अंग विनै को,
जाको किये बुध पुण्य लहे जगसार है।।५५।।
अवज्ञा वचन जाको कहूं न कहत भूलि,
निंदा बार–बार गोप्य, गुण को गहिया है।
धरम को जस जाको परम सुहावत है,
धरम को हित हेतु हिये में चहिया[2] है।।
किये अवहेल[3] तातैं लगत अनेक पाप,
ऐसो उर जानि जाके दोष को दहिया[4] है।
आपनी सकति जहां निंदा सब मेटि डारे,
ऐसा विनैभाव जात[5] पुण्य को लहिया है।५६।।
जाके उपदेश सेती धरम को लाभ होय,
सो ही परमातमा यो ग्रंथन में गायो है।

---

१ वक्र, टेढा, २ चाह, अभिलाषा, ३ तिरस्कार, ४ दूर किया, जलाया, ५ विनय भाव से उत्पन्न

आप अधिकार मांहि ताको दुखभार होय,
अधिकार ऐसो बुधिवंत ने न भायो है।।
आप के प्रभुत्व में न साधरमी सार करे,
आछादन लगे मूढ निंद्य ही कहायो है।
देके धन संपदा को आपके समान करे,
साधरमी हासि[1] मेटि पुण्य जे उपायो है।।५७।।
अरहन्त सिद्ध श्रुत समकित साधु महा,
आचारज उपाध्याय जिनबिंब सार है।
धरम जिनेश जाको धन्य है जगत मांहि,
च्यारि परकार संघ सुध अविकार है।।
पूजि इन दशन को पंच परकार विनै,[2]
कीजिए सदैव जाते लहे भव पार है।
धरमको मूल यह ठौर–ठौर विनै गायो,
विनैवंत जीव जाकी महिमा अपार है।।५८।।
नाम नौका चढिके अनेक भव पार गये,
महिमा अनन्त जिननाम की बखानी है।
अधम अपार भवपार लहि शिव पायो,
अमर निवास पाय भये निज ज्ञानी है।।
नाम अविनाशी सिद्धि–रिद्धि–वृद्धि करे महा,
नाम के लिये ते तिरे तुरत भवि[3] प्राणी है।
नाम अविकार पद दाता है जगत मांहि,
नाम की प्रभुता एक भगवान जानी है।।५९।।
महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की,
ताके सम[4] तीर्थंकरदेवजी की मानिये।

---

१ ह्रास, गिरावट, २ पाँच प्रकार की विनय–ज्ञान विनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, तप विनय, उपचार विनय, ३ मुद्रित पाठ है–'हा', भव्य प्राणी, ४ समान

तीर्थंकरदेव मिलें दसक हजार ऐसी,
महिमा महत[1] एक प्रतिमा की जानिये।।
सो तो पुण्य होय तब विधि सों विवेक लिये,
प्रतिमा के ढिग[2] जाय सेवा जब ठानिये।
नाम के प्रताप सेती[3] तुरत[4] तिरे हैं भव्य,
नाम–महिमा विनते[5] अधिक बखानिये।।६०।।
कर में जपाली[6] धरि जाप करे बार–बार,
धन ही में मन यातैं काज नहीं सरे है।
जहां प्रीति होय याकी सोई काज रसि पडे[7],
विना परतीति यह भवदुख भरे है।।
तातैं नाम माहिं रुचि धर परतीति सेती,
सरधा अनाये[8] तेरो सबै[9] दुख टरे है।
नाम के प्रताप ही ते पाइये परम पद,
नाम जिनराज को जिनदेश ही सो करे है।।६१।।
नाम ही को ध्यान में अनेक मुनि ध्यावत हैं,
नाम ते करमफंद छिन में विलाय है।
नाम ही जिहाज भवसागर के तिरवे को,
नाम ते अनंतसुख आतमीक पाय[10] है।।
नाम के लिये ते हिये राग–दोष रहे नांहि,
नाम लिये ते होय तिहुं लोकराय है।
नाम के लिये ते सुरराज आय सेवा करे,
सदा भव मांहि एक नाम ही सहाय है।।६२।।
धन्य पुण्यवान है अनाकुल सदैव सो ही
दुख को हर्यो सो ही सदा सुखरासी है।

---

१ महत्व, २ पास, ३ से, ४ तुरन्त, ५ उनसे, ६ जयमाला, ७ स्वाद आता है ८ आने पर, ६ सभी, १० मुद्रित पाठ 'धाय' है, प्राप्त करता है

सो ही ज्ञानवान भव–सिंधु को तिरैया जानि,
सो ही अमलान पद लहे अविनासी है।
ताके तुल्य और की न महिमा बखानियतु,
सो ही जग मांहि सब तत्त[1] को प्रकासी है।।
प्रभु नाम हिये निशिदिन ही रहत जाके,
सो ही शिव पाय नहीं होय भववासी है।।६३।।
त्रिभुवननाथ तेरी महिमा अपार महा,
अधम उधारे बहु तारे एक छिन में।
तेरो नाम लिये ते अनेक दुख दूर होत,
जैसे अधिकार विले जाय सही दिन में।।
तू ही है अनंतगुण रिद्धि को दिवैया देव,
तू ही सुखदायक है प्रभु खिन–खिन[2] में।
तू ही चिदानंद परमातमा अखंडरूप,
सेये पाप जरे[3] जैसे ईधन अगनि[4] में।।६४।।
देव जगतारक जिनदेश हैं जगत मांहि,
अधम उधारण को विरद अनूप है।
सेयें सुरराज राज हू से आय पाय परें,
हरे दुख–द्वंद प्रभु तिहुंलोक भूप है।।
जाकी थुति किये ते अनंतसुख पाइयतु,
वेद में बखान्यो जाको चिदानंद रूप है।
अतिशय अनेक लिये महिमा अनंत जाकी,
सहज अखंड एक ज्ञान का स्वरूप है।।६५।।
नाम विसतारो[5] महा करि है छिनक मांहि,
अविनासी रिद्धि–सिद्धि नाम ही तैं पाइये।
तिहुंलोक नाथ एक नाम के लिये ते ह्वै है,

१ तत्त्व, २ क्षण–क्षण में, ३ जलता है, ४ अग्नि, ५ मुद्रित पाठ है–निसतारौ

नाम परसाद शिवथान में सिधाइये।।
नाम के लिये ते सुरराज आय सेवा करे,
नाम के लिये ते जगि अमर कहाइये।
नाम भगवान के समान आन कोऊ नाहिं,
यातैं भवतारी नाम सदा उर भाइये।।६६।।
आतमा अमर एक नाम के लिये ते होय,
चेतना अनंत चिन्ह नाम ही ते पावे हैं।
नाम अविकार तिहुंलोक में उधार करे,
परम अनूप पद नाम दरसावे है।।
आनंद को धाम अभिराम देव चिदानंद,
महासुख कंद सही नाम ते लखावे है।
नाम उर जाके सो ही धन्य है जगत मांहि,
इन्द्र हू से[1] आय-आय[2] जाको सिर नावे है।।६७।।

दोहा

नाम अनूपम निधि यहै, परम महा सुखदाय।
संत लहे जे जगत में ते अविनाशी थाय।।६८।।
नाम परम पद को करे, नाम महा जग सार।
नाम धरत जे उर मही, ते पावें भवपार।।६९।।

सवैया

भवसिंधु तिरवे को जग में जिहाज नाम,
पापतृण जारवे को अगनि समान है।
आतम दिखायवे को आरसी विमल महा,
शिवतरु सीचवे को जल को निधान है।।
दुख-दव[3] दूर करिवे को कह्यो मेघ सम,

---

१ इन्द्रलोक से भी, २ आ-आ कर, ३ दुःख रूपी वन की अग्नि,

वांछित देवे को सुरतरु अमलान है।
जगत के प्राणिन को शुद्ध करिवे को,
जैसे लोह को करे पारस पाखान[1] है।।७०।।

दोहा

नवनिधि अरु चउदह रतन, नाम समान न कोय।
नाम अमर पद को करे, जहां अतुल सुख होय।।७१।।

सवैया

माया ललचाय यह नरक को वास करे,
ताके वशि मूढ जिनधर्म को भुलाय है।
अति ही अज्ञानी अभिमानी भयो डोलत है
पारे[2] अंध फंद[3] हिये हित नहीं आय है।।
चेतन की चरचा में चित कहुं लावे नाहिं,[4]
ख्याति–पूजा–लाभ महा ये ही मन भाय है।
पर अनुराग में न जाग है स्वरूप की है,
बहिर्मुख भयो बहिरातम कहाय है।।७२।।
ग्रंथ को कहिया ताको आप ढिग राख्यो चाहे,
ताका अपमान भये दोष न अनाय[5] है।
ताके[6] हांसि[7] भये जिन मारग की हांसि ह्वै है,
ऐसो विवेक नेक[8] हिये नहीं थाय है।।
माया अभिमान में गुमान कहुं भावे नाहिं,
बाहिज की दृष्टि[9] सों तो बाहिज[10] लगाय है।
धरम उद्योत जासो कहा कैसे बणि आवे,
झूठ ही में पग्यो सांचो धरम न पाय है।।७३।।
गुण को न गहे मान अति अन्यत्र चहे,

---

१ पारस मणि (लोहे को सोना बना देने वाली मणि), २ डालता है, ३ फन्दा (राग–द्वेष), ४ नहीं, ५ लाता है, ६ उसकी, ७ हँसी, ८ थोड़ी, ६ बहिर्मुखी दृष्टि, १० बाहर

लहे न स्वरूप की समाधि सुख भावना।
चेतन विचार ताको जोग काहू समै जुरे,
ताहू समै करे और मन की उपावना[1]।।
केतक ही[2] काजि के उपाय के उपाय करे,
कामिनी के काज में हजारों धन लावना।
साधरमी हेतु हित नेक न लगावे मूढ़,
पाप पंथ पग्यो भव-भांवरि बढावना।।७४।।
दुर्लभ अनादि सतसंग है स्वरूप भाव,
ताको उपदेश कहु दुर्लभ कहीजिये।
चरचा-विधान ते निधान निज पाइयत,
होय के गवेषी तहां तामें मन दीजिये।।
इर्ष्या किये ते बंध पड़े[3] ज्ञानावरणी को,
गुण के गहिया[4] ह्वै के[5] ज्ञानरस पीजिये।
जाको संग किये महा स्वपद की प्राप्ति ह्वै,
सो ही परमातमा सही सों लख लीजिये।।७५।।
जाके संग सेती महा स्वपर विचार आवे,
स्वपद बतावे एक उपादेय आप है।
गुण को निधान भगवान[6] पावे घट ही में,
ताके संग सेती दूर होय भवताप है।।
ताके संग सेती शुद्धि सिद्धि सो स्वरूप जाने,
धन्य-धन्य जाको जाके संग सों मिलाप है।
ऐसो हू कथन सुणि[7] क्रूर जो कुचरचा करें,
भव अधिकारी मूढ़ बांधे अतिपाप है।।७६।।
एक परमपद[8] दूजो देखे परपद को है,

---

१ उपयोग लगाना, २ मुद्रित पाठ है-कतक के; कितने ही, ३ पड़ता है, ४ ग्राहक, ५ हो कर, ६ भगवना आत्मा, ७ सुन कर, ८ परम पद, मुद्रित पाठ 'परपद' है।

देखे सो स्वपद दीसे सो ही सब पर है।
ऐसे भेद–ज्ञान सों निधान निज पाइयत,
चेतन स्वरूप निज आनंद को घर है।।
चौरासी लाख जोनि जाम[1] जनमादि दुख,
सहे ते अनादि ताको मिटे तहां डर है।
तिहुंलोक पूज्य परमातमा ह्वै निवसे है,
तहां ही कहावे शिवरमणी को वर है।।७७।।
केऊ कूर[2] कहें जग–सार है स्वपद महा,
ऐसा कहें परि सदा मलान ही[3] रहतु हैं।
कामिनी कुटुंब काजि लाखन लगाय देत,
स्वपद बतावे ताको हित न चहतु हैं।
नेक उपकार सार संत नहीं विसरे हैं,
ऐसो उपकार भूले कहत महंतु हैं।।
जाकी बात रुचि सेती सुणे[4] शिवथान होय,
जीके धन्य जाको अनुराग सों कहतु हैं।।७८।।
तीरथ में गये परिणाम सुद्ध होय नांहि,
सतसंग सेती स्वविचार हिये आवे है।
ऐसो सतसंग परंपरा शिवपद दाता,
तिन हूं सो महामूढ़ मान को बढ़ावे है।।
लक्ष्मी हुकम लखि मन मांहि धारें मद,
ऐसे मदधारी नांही निज तत्त्व पावे है।
आतम की आप कोड[5] बात कहे राग सेती,
धन्य सो वारिघन[6] तिन ऊपरि[7] सुहावे है।।७९।।
नेक उपकार करे संत ताहि भूले नाहिं,

---

१ चैतन्य स्वभाव, २ मूर्ख, अज्ञानी, ३ मुद्रित पाठ है–परिवूफदु(?); किन्तु सदा म्लान (शोकाकुल) रहते हैं, ४ सुनने पर, ५ करोड़, ६ ओस, ७ मुद्रित पाठ है– परिब गावे है,

ताको गुण मानि ताकी सेवा करे भाव सों।
आतमी तत्त्व तासों प्राप्ति ह्वै ताही करि,
अमर स्वपद ह्वै है सहज लखाव सों।।
ऐसो गुण ताको मूढ़ गिणे नांहि नेक हू है,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
महंत कहावे कृतघनी के कहाव सों।
सोई धन्य जगत में सार उपकार माने,
आप हित करे ताको पूजत सहाव[1] सों।।८०।।
जासों हित पावे ताको आश्रित ही राख्यो चाहे,
मान की मरोर में बडाई चाहे आप की।
दाम[2] ही में राम जाने और की न बात माने,
हित न पिछाने रीति बाढ़े भवताप की।।
जाके उपदेश सों अनूपम स्वरूप पावें,
ताको अपमाने[3] थिति बांधे महापाप की।
औगुण[4] गहिया भवजाल के बंधेया[5] वह,
कैसे रीति राखे उपकारी के मिलाप की।।८१।।
कह्यो है अनंतवार सार है स्वपद महा,
ताको बतावे सो ही सांची उपकारी है।
ताको गुण माने जो तो सांचि ह्वै स्वरूप सेती,
ऐसी रीति जाने जाकी समझि ही भारी है[6]।।
नय व्यवहार ही में कह्यो है कथन एतो,
रीझि[7] में न विकलप विधि को उघारी है।
ऐसो उपदेश सार सुणि न विकार गहे,
सो ही गुणवान आप आप ही धिकारी[8] है।।८२।।
जाके गुण चाहि ह्वै तो गुण को गहिया होय,

---

१ स्वभाव, २ रूपया–पैसा, ३ निरादर, अपमान करने से, ४ अवगुण, दोष, ५ मुद्रित पाठ 'बहिया' है, ६ उत्कृष्ट, ७ मोहित ८ धिक्कारी

औगुण की चाहि ह्वे तो औगुण गहतु हैं।
काक ज्यों अमेधि[१] गहि मन में उमाह[२] धरे,
हंस चुगे मोती ऐसे भाव सों सहितु हैं।
भावना स्वरूप भाये भवपार पाइयतु,
ध्याये परमातमा को होत यों महतु हैं।
तातैं शुद्ध भाव करि तजिये अशुद्ध भाव,
यह सुख मूल महा मुनिजन कहतु हैं।।८३।।
करम संजोग सो विभाव भाव लगे आये,
परघट[३] आपो मानि महादुख पाये हैं।
कल्ली उकति[४] जाके अरथ विचारि अब,
जागि तोको जो तो यह सुगुण सुहाये हैं।।
जामें खेद भय रोग कछु न वियोग जहां,
चिदानंदराय में.अनंत सुख गाये हैं।
सबै जोग जुर्‍यो अब भावना स्वरूप करि,[५]
ऐसे गुह[६] बैन कहे भव्य उर आये हैं।।८४।।
पाय के प्रभुत्व प्रभु सेवा कीजे बार–बार,
सार उपकार करि परदुख हरि लीजिये।
गुणीजन देखिके उमाह धरि मन मांहि,
विनही[७] सों राग करि विनरूप[८] कीजिये।
चिदानंद देव जाके संग सेती पाइयतु,
तेरे परमातमा सो तामें मन दीजिये।
तिया सुत लाज मोह हेतु काज वहै[९] मति जाही,
ताही[१०] भांति तैं स्वरूप शुद्ध कीजिये।।८५।।
कह्यो मानि मेरो पद तेरो कहुं दूरि नांहि,

---

१ अस्थि, २ उमंग, ३ भावकर्म (राग, द्वेष, मोह), ४ दिव्यध्वनि, जिनवाणी, ५ शुद्धात्म स्वरूप की भावना, ६ रहस्यमय, ७ उनसे ही, ८ उन रूप, ६ वही, १० उसी

तोहि मांहि तेरो पद तू ही हेरि[1] आप ही।
हेरे आन थान में न ज्ञान को निधान लहे,
आप ही हैं आप और तजि दे विलाप[2] ही।।
मेटि दे कलेश के कलाप[3] आप ओर होय,
जहां नहीं धूलि[4] लागे दोउ पुण्य–पाप ही।
तिहुं[5] लोक शिखर पै[6] शिवतिया[7] नाथ होय,
आनंद अनूप लहि मेटे भवताप ही।।८६।।
मार्गदर्शक- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
केउ तप–ताप सहे केउ मुखि मौन गहें,
केउ ह्वै नगन रहें जग सों उदास ही।।
तीरथ अटन[8] केउ करत हैं प्रभु काजि,
केउ भव भोग तजि करें वनवास ही।।
केउ गिरकंदरा में बैठि हैं एकांत जाय,
केउ पढि धारें विद्या के विलास ही।
ऐसे देव चिदानंद कहो कैसे पाइयतु,
आप लखें तेई धरे ज्ञान को प्रकास ही।।८७।।
केउ दौरि[9] तीरथ को प्रभु जाय ढूंढ़तु हैं,
केउ दौरि पहर पै छीके चढ़ि ध्यावे हैं।
केउ नाना वेष धारि देव भगवान हेरे,[10]
केउ औंधे मुख झूलि महा दुख पावे हैं।।
ऐसे देव चिदानंद कहो कैसे पाइयत,
आतम स्वरूप लखें अविनाशी ध्यावे हैं।८८।।
केउ वेद पढ़िके पुराण को बखान करे,
केउ मंत्र पक्ष ही के लागे अति केवे[11] हैं।
केउ क्रियाकांड में मगन रहें आठो जाम।

---

१ ढूंढो, २ रोना–धोना, २ दुःख–समूह, ४ मुद्रित पाठ है–मूलि, ५ तीन लोक, ६ पर, ७ मुक्ति–रमणी, ८ भ्रमण, ६ दौड़ कर, १० ढूंढ़ते हैं, ११ बहुत कहते हैं

केउ सार जानि के अचार ही को सेवे हैं।।
केउ वाद जीति के रिझावे जाय राजन[1] को,
केउ ह्वै अजाची धन काहू कौन लेवे हैं।
ऐसो तो अज्ञानता में चिदानंद पावे नांहि,
ब्रह्मज्ञान जाने तो स्वरूप आप बेवे[2] हैं।।८६।।
कथित जिनेन्द्र जाको सकल रहसि यह,
शुद्ध निजरूप उपादेय लखि लीजिये।
स्वसंवेद ज्ञान अमलान है अखंड रूप,
अनुभौ अनूप सुधारस नित पीजिये।।
आतम स्वरूप गुण धारे है अनंतरूप,
जामें घरि आयो पररूप तजि दीजिये।
ऐसे शिव साधक ह्वै साधि शिवथान महा,
अजर-अमर-अज होय सदा जीजिये।।६०।।

दोहा

यह अनूप उपदेश करि, कीनो है उपकार।
'दीप' कहे लखि भविकजन, पावत पद अविकार।।६१।।

इति

१ राजाओं को, २ स्वसंवेदन, आत्मानुभव करते हैं,

परिशिष्ट

अथ आत्मावलोकन स्तोत्र

गुण-गुण की सुभाव विभावता, लखियो दृष्टि निहार।
पै आन आन में न मिले, होसी ज्ञान विथार।।१।।

अर्थ–प्रत्येक गुण को स्वभाव और विभाव की दृष्टि से परख कर देखने से यह निश्चय होता है कि अन्य अन्य में नहीं मिलता, इस समझ से तुम्हारा ज्ञान निर्मल तथा विस्तृत होगा।

सब रहस्य या ग्रन्थ को, निरखो चित्त देय मित्त।
चरन स्यों जिय मलिन होय, चरन स्यों पवित्त।।२।।

अर्थ–हे मित्र! इस ग्रन्थ का रहस्य चित्त लगा कर समझना। जीव आचरण, चारित्र से ही मलिन होता है और आचरण चारित्र से ही पवित्र होता है।

चरन उलटें प्रभु समल, सुलटे चरन सब निर्मल होति।
उलट चरन संसार है, सुलट परम की ज्योति।।३।।

अर्थ–चारित्र उलटा (मिथ्या) होने से प्रभु (जीव) मलिन होता है, चारित्र सुलटा–सम्यक् होने से सब निर्मल हो जाते हैं। मिथ्याचारित्र संसार है और सम्यक्चारित्र परमज्योति अर्थात् मोक्ष है।

वस्तु सिद्ध ज्यों चरन सिद्ध है, चरन सिद्धि सो वस्तु सिद्धि।
समल चरण तब रंक-सा, चरन शुद्ध अनंती ऋद्धि।।४।।

अर्थ–वस्तुकी सिद्धि से चारित्र की सिद्धि है, चारित्रकी सिद्धि से वस्तुकी सिद्धि है (वस्तु के आश्रय से ही चारित्र परिणाम होता है और चारित्रपरिणाम बिना वस्तुका स्वाद नहीं आता), जब मलिन चारित्र है, तब रंक के समान है और चारित्र शुद्ध होने पर अनंत ऋद्धि वाला है।

इन चरन पर के वसि कियो, जिय को हो संसार।
निज घर में तिष्ठ कर, लहे जगत स्यों पार।।५।।

अर्थ–परवश आचरण से जीवको संसार होता है, किन्तु निज घर में स्थित होने से जगत से पार होता है।

व्यापक को निश्चय कहो, अव्यापक व्यवहार।
व्याप अव्यापक फेर स्यों, भया एक द्वय प्रकार।।६।।

अर्थ–व्यापक को निश्चय कहते हैं और अव्यापक को व्यवहार कहते हैं। व्यापक–अव्यापक के भेद से एक दो प्रकार कहा जाता है।

स्वप्रकास निश्चय कहा, पर परकासक व्यवहार।
व्यापक अव्यापक भाव स्यों, तातैं वानी अगम अपार।।७।।

अर्थ–ज्ञान को स्वप्रकाशक निश्चय से कहते हैं और परप्रकाशक व्यवहार से कहते हैं। उसे व्यापक, अव्यापक भाव के भेद से भी कहा जाता हैं। अतः जिनवाणी अगम और अपार है।

क्षण में देखो अपनी व्यापकता, इस जिय थल स्यों सदीव।
तातैं भिन्न हूं लोक तैं, रहूं सहज सुकीव।।८।।

अर्थ–एक दृष्टि से देखने पर जीव निजस्थान से त्रिकाल व्यापक है। अतः मैं इस लोक से भिन्न भली प्रकार अपने भिन्न सहज भाव में रहता हूं।

छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि जीवका ज्ञान, दर्शनादि, इन्द्रियमन सहित और इन्द्रियमन अतीतका किंचित् विवरण-

दोहा

बुद्धि अबुद्धि करि दुधा, बढ़े छदमस्थी धार।
इन को नास परमात्म बन, भव जलनिधि के पार।।६।

अर्थ–छद्मस्थ जीव में बुद्धि–अबुद्धि दो प्रकार से परिणामों की धारा प्रवाहित होती है। भव–समुद्र के पार जाने के लिए तथा परमात्मा होने के लिये इन को नष्ट कर।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सोरठा

जे अबुद्धिरूप परिनाम, ते देखे जाने नहीं।
तिन को सर्व सावरन काम, कैसे देखे जाने वापुरे।।१०।।

अर्थ–जो अबुद्धिरूप परिणाम हैं, वे देखते–जानते नहीं हैं। उन का सर्व कार्य आवरण सहित होने से वे विचारे स्वयं कैसे देख, जान सकते हैं?

पुनः

जु बुद्धरूपी धार, सो जथाजोग जाने देखे सदा।
ते क्षयोपशम आकार, तातैं देखे जाने आप ही।।११।।

अर्थ–बुद्धिरूपी धारा सदा यथायोग्य जानती–देखती है। वह धारा क्षयोपशम आकाररूप होने से स्वयं ही देखती–जानती है।

पुनः

बुद्धि परनति षट्भेद, भए एक जीव परनाम के।
फरस, रस, घ्राणैक, श्रोत्र, चक्षु, मन छठवां।।१२।।

अर्थ–एक जीव के परिणाम की, बुद्धि परिणति के भेद से छह तरह की है जो इस तरह हैं– स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, और मन।

दोहा

भिन्न-भिन्न ज्ञेयहि उपरि, भए भिन्न थान के ईश।
तातैं इनको इन्द पद, धर्‌यो वीर जगदीस।।१३।।

अर्थ (उपयोगके पांच इन्द्रिय भेद) भिन्न–भिन्न ज्ञेयों पर भिन्न–भिन्न स्थान (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द) के ईश हुए (जानते हैं अतः ईश कहलाते हैं), अतएव तीन लोक के ईश वीर जिनेन्द्र ने इन को इन्द्रपद नाम दिया।

पुनः

ज्ञेयहि लक्षन भेद को, मानइ चिंतइ जो ज्ञान।
ताको मन चित्त संज्ञा धरी, लखियो चतुर सुजान।।१४।।

अर्थ–जो ज्ञान, लक्षण भेदरूप से ज्ञेयों का मनन, चिंतन करता है, उस के मन अथवा चित्त संज्ञा दी गई। हे चतुर ज्ञानी पुरुषो! देखो।

पुनः

ज्ञान दर्शन धारा,   मन इन्द्री पद इम होत।
भी इन नाम उपचार से, कहे देह अंग के गोत।।१४।।

अर्थ–ज्ञान–दर्शनधारा को इस प्रकार मन, इन्द्रिय पद प्राप्त हुआ। फिर देहके अंगों के ये ही नाम उपचार से कहे गये हैं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पुनः

यहु बुद्धि मिथ्याती जीव के, होई क्षयोपशम रूप।
पै स्वपर भेद लखे नहीं, तातैं निज रवि देखन धूप।।१६।।

अर्थ–मिथ्यात्वी जीवके यह बुद्धि क्षयोपशम रूप होती है, परन्तु स्वपर का भेद नहीं देखती है; अतः निज ज्ञानसूर्य और उसके प्रकाश को नहीं देख पाती है।

पुनः

सम्यग्दृष्टि जीव के, बुध धार सम्यग् सदीव।
स्वपर जाने भेद स्यों रहे भिन्न ज्ञायक सुकीव।।१७।।

अर्थ–सम्यग्दृष्टि जीवकी बुद्धि धारा सदा ही सम्यक् होती है। स्वपर भेद जानने से वह सब से भिन्न ज्ञायक ही रहता है।

चौपाई

मन इन्द्री तब ही लों भाव, भिन्न-भिन्न साधे ज्ञेय को ठांव।
सब मिलि साधे जब इक रूप, तब मन इंद्री का नहीं रूप।।१८।।

अर्थ–जब तक (उपयोगके भेद) भिन्न–भिन्न ज्ञेय–स्थान का साधन करते हैं, तब तक ही मन इन्द्रिय भाव है, जब सर्व उपयोग एक स्वरूप का साधन करता है, तब उसका मन–इन्द्रियरूप नहीं रहता।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इक पद साधन को किय मेल, तब मन इंद्री का नहीं खेल।।
तातैं मन इन्द्री भेद पद नाम, है अतीन्द्री एकमेक परनाम।।१६।।

अर्थ–एक (स्व) पद साधने को जब उपयोग के भेद मिल गये (उपयोग सर्व ओर से हटकर एकरूप अभेद हुआ), तब मन, इन्द्रिय का खेल, नाटक नष्ट हो गया। अतः मन, इन्द्रिय उपयोग के भेद के नाम हैं। अतीन्द्रिय परिणाम तो एक अभेद परिणाम है।

स्व अनुभव छन विषैं, मिले सब बुद्धि परनाम।
तातैं स्व अनुभव अतींद्री, भयो छद्मस्थी को नाम।।२०।।

अर्थ–स्व अनुभव क्षण में सब बुद्धि परिणाम मिलकर प्रवर्तते हैं, अतः स्व अनुभवका नाम छद्मस्थ के अतीन्द्रिय कहलाता है।

जा विधि तैं मन इन्द्रिय होत, ता विधि स्यों भए अभाव।
तब तिन ही परनाम को, मन इन्द्री पद कहा बताव।।२१।।

अर्थ–मन और इन्द्रिय इस विधि से (उपयोग भेदसे) होते हैं और उस विधि से (अभेद उपयोग से) भेद, अभाव हुए, तब उन परिणामों को मन इन्द्रिय पद कैसा?

सम्यग् बुद्धि परवाह, क्षणरूप मझ क्षण रूप तट।
पै रूप छांडि न जाह, यहु सम्यक्त्वता को महातम।।२२।।

अर्थ–सम्यक्ज्ञान प्रवाहका क्षणरूप मध्य (निर्विकल्प) होता है और क्षणरूप तट (सविकल्प) होता है, परन्तु रूप छोड़कर नहीं जाता, यह सम्यक्त्वका माहात्म्य है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनुभव के दोहा-

हूँ चेतन हूँ ज्ञान, हूँ दर्शन सुख भोगता।
हूँ अर्हन्त सिद्ध महान, हूँ ही हूँ को पोषता।।२३।।

अर्थ–मैं चेतन हूँ, मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शन हूँ, मैं सुखका भोक्ता हूँ, मैं अर्हन्त–सिद्ध महान हूँ, मैं ही का पोषक हूँ।

जैसे फटिक के बिंब में, रह्यो समाय जोति को खंध।
पृथक मूर्ति परकास की, बंधी प्रत्यक्ष फटिक के मंध।।२४।।

अर्थ–जैसे स्फटिक के बिंब में दीप ज्योति का स्कंध समा रहा है, परन्तु स्फटिक में प्रकाश की प्रत्यक्ष भिन्न मूर्ति है।

तैसे यह कर्म स्कंध में समाय रहा हूं चेतन दर्व।
पै पृथक् मूर्ति चेतनमई, बंधी त्रिकालगत सर्व।।२५।।

अर्थ–उसी प्रकार इस कर्म–स्कंध में मैं चेतन द्रव्य समा रहा हूं, परन्तु तीनों काल सर्वज्ञ स्वभावी चेतनमयी मूर्ति पृथक् रहती है।

नख सिख तक इस देह में निवसत हूं मैं चेतनरूप।
जिस क्षण हूं ही को लखूं, ता क्षण मैं हौं चेतनभूप।।२६।।

अर्थ–नख से लेकर शिखा तक इस शरीर में मैं चेतनरूप पुरुष

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

निवास करता हूं। जिस क्षण मैं स्वयं को ही देखता हूं, उसी क्षण मैं चैतन्यराजा हूं।

इस ही पुद्‌गल पिण्ड में, वहै जो देखन जाननहार।
यह मैं यह मैं यह जो कुछ देखन जाननहार।।२७।।

अर्थ–इस ही पुद्‌गल पिंड में वह जो देखने, जानने वाला जो कुछ है, वहीं मैं हूं, वही मैं हूं।

यह मैं, यह मैं, मैं यही, घट बीच देखत जानत भाव।
सही मैं सही मैं सही, यह देखन जानन ठाव।।२८।।

अर्थ–अंतर में जो देखने–जानने वाला भाव है, यही मैं हूं, मैं ही हूं। यह दर्शक–ज्ञायक स्थान (पिंड) निश्चित ही मैं हूं।

अथ चारित्र-

हूं तिष्ठ रह्यो हूं ही विषै, जब इन पर से कैसा मेल।
राजा उठि अंदर गयो, तब इस सभा से कैसो खेल।।२९।।

अर्थ–मैं मुझ में ही ठहरा हूँ, तब इस पर से मेरा संबंध कैसा? जब राजा उठ कर अंदर गया, तब सभा का नाटक कैसा? क्योंकि खेल तो सब बाहर में हो रहा है।

प्रभुता निजघर रहे, दुःख नीचता पर के गेह।
यह प्रत्यक्ष रीति विचारिके, रहिये निज चेतन गेह।।३०।।

अर्थ–अपने घर में प्रभुता रहती है और पर के घर दुःख और नीचता रहती है। यह प्रत्यक्ष रीति विचार कर निज चेतन गृह में रहना चाहिये।

पर अवलंबन दुःख है, स्व अवलंबन सुखरूप।
यह प्रगट लखाव पहचान के, अवलंबियो सुख-कूप।।३१।।

अर्थ-पर अवलंबन दुःखरूप है और स्व अवलंबन सुखरूप है। यह प्रगट देखकर और लक्षण से पहिचान-कर सुख-कूप (स्रोत) का अवलंबन करना चाहिये।

यावत तृष्णारूप है, तावत मिथ्या-भ्रम-जाल।
ऐसी रीति पिछानिके, लहिये सम्यग् विरति चाल।।३२।।

अर्थ-जब तक तृष्णारूप है, तब तक मिथ्या भ्रमजाल है। ऐसी रीति पहचानकर सम्यक् विरति ग्रहण करना चाहिये।

पर के परिचय धूम है, निज परिचय सुख चैन।
यह परमारथ जिन कह्यो, उस हित की करी जु सैन।।३३।।

अर्थ-पर के परिचय से आकुलता है और निज के परिचय से सुख-चैन (शान्ति) है। जिनेन्द्रदेव ने यह परमार्थ कह कर उस हित (आत्महित) का संकेत किया है।

इस धातुमयी पिंडमयी रहूं हूं अमूरति चेतन बिम्ब।
ताके देखत सेवतें रहे पंचपद प्रतिबिम्ब।।३४।।

अर्थ-इस धातुमयी पिंड में मैं अमूर्तिक चेतन बिम्ब रहता हूं। उसके देखने और सेवन करने में पाचों परमपद प्रतिबिंबित होते हैं।

तब लग पंचपद सेवना, जब लग निजपद की नहीं सेव।
भई निजपदकी सेवना, तब आपे आप पंच पद देव।।३५।।

अर्थ–तब तक पंचपरमेष्ठी की सेवा करता है, जब तक निजपद की सेवा नहीं करता। निजपद की सेवा होते ही स्वयं पंचपरमेष्ठी देव है।

पंच पद विचारत ध्यावतें, निजपद की शुद्धि होत।
निजपद शुद्धि होवतें निजपद भवजल-तारण पोत।।३६।।

अर्थ– पांच पदों को विचारने और ध्यान करने पर निजपद की शुद्धि होती है। निजपद की शुद्धि होने पर निजपद भव–जल से पार होने के लिये जहाज के समान है।

हूं ज्ञाता द्रष्टा सदा, हूं पंचपद त्रिभुवन सार।
हूं ब्रह्म ईश जगदीशपद, सो हूं के परचें हूं पार।।३७।।

अर्थ–मैं सदा ज्ञाता हूं, दृष्टा हूं। मैं तीन लोक में सार पंचपद (परमेष्ठी) हूं। मैं ब्रह्मा, ईश्वर और जगदीश स्वरूप हूं। सोहं का परिचय होते ही भवोदधिसे पार होता है।

इति श्रीआत्मावलोकनस्तोत्रम्।